छात्रहितकारी पुस्तकमाला—सं० ३०

जागृति का सन्देश

[धार्मिक तथा राष्ट्रीय भावनाओं को उत्तेजित करने वाले स्वामी विवेकानन्द जी के व्याख्यान]

लेखक—

स्वामी विवेकानन्द

अनुवादक—

श्री गणेश पाण्डेय

प्रकाशक—

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

प्रथम संस्करण १५०० } जून १९३९ { मूल्य ॥)

प्रकाशक—

बाबू केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक—

श्री रघुनाथप्रसाद वर्मा,

नागरी प्रेस, दारागंज,

प्रयाग।

—मैं तुम लोगों को घोर नास्तिक देखना पसन्द करूँगा, लेकिन कुसंस्कारों से भरे मूर्ख देखना न चाहूँगा। नास्तिकों में कुछ न कुछ जीवन तो होता है; उनके सुधार की तो कुछ आशा है, वे मुर्दे तो नहीं हैं। लेकिन यदि मस्तिष्क में कुसंस्कार घुस जाते हैं, तो वह बिल्कुल बेकार हो जाता है। दिमाग़ बिल्कुल फिर जाता है। मृत्यु के कीड़े उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। तुम्हें इन दोनों को छोड़ना होगा। मैं साहसी, निर्भीक नौजवानों को चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम लोगों में ताजा खून हो, स्नायुओं में तेज़ी हो, पेशियाँ लोहे की तरह सख्त हों। मस्तिष्क को बेकार और कमज़ोर बनाने वाले भावों की आवश्यकता नहीं, इन्हें छोड़ दो।......

—विवेकानन्द

विषय-सूची

जागृति का संदेश
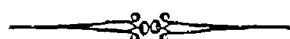
नवयुवको, जागो

मनुष्य अपनी मुक्ति की चेष्टा के लिये संसार की माया का सम्बन्ध एक बारगी छोड़ देना चाहता है। वह अपने आत्मीय, स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धव की माया सो काटकर संसार से दूर, अत्यन्त दूर भाग जाता है। वह देह के सभी सम्बन्धों, पुराने सभी संस्कारों को त्यागने का प्रयत्न करता है। यही क्यों, वह इस बात को भी भूल जाने का प्रयत्न करता है कि मनुष्य साढ़े तीन हाथ का लम्बा देहधारो जीव है, लेकिन वह अपने भीतर ही भीतर एक मृदु अस्फुट ध्वनि सुन पाता है, उसके कानों के पास एक सुर सर्वदा कहता रहता है, "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" हे भारत की राजधानी के निवासियो, मैं आप लोगों के सामने सन्यासो के रूप में नहीं खड़ा हुआ हूँ, और न धर्म प्रचारक ही के रूप में खड़ा हूं किन्तु आप लोगों

मैं कलकत्तावासी बालक रूप में आपके सामने उपस्थित हूं

के पास वही पहले की तरह कलकत्तावासी बालक के रूप में खड़ा हूं। हे भाइयो, मेरी इच्छा होती है कि इस नगरी के राज-पथ की धूल पर बैठकर बालक की तरह आप लोगों से अपने मन की सब बातें खोल कर कहूँ। इसलिये आप लोगों ने मुझे 'भाई' कह कर सम्बोधन किया है, उसके लिये आप लोगों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। हाँ, मैं आप लोगों का भाई हूँ, आप लोग भी मेरे भाई हैं। पाश्चात्य देशों से लौटने के कुछ ही पहले एक अंग्रेज मित्र ने मुझ से पूछा था कि चार वर्ष तक "विलासिता की लीलाभूमि, गौरव मुकुटधारी, महाशक्तिशाली पाश्चात्य देशों में भ्रमण करने के बाद आपकी मातृ-भूमि आप को कैसी लगेगी?" मैं बोला, "पाश्चात्य देशों में आने के पहले मैं अपनी मातृ-भूमि को प्यार करता था, इस समय इसका कण कण मुझे प्रिय है, भारत की हवा मेरे लिये इस समय पवित्रता से पूर्ण है, भारत इस समय मेरे लिये तीर्थ रूप है।" इसके सिवा और कुछ मैंने नहीं कहा।

हे कलकत्ता के निवासियो, मेरे भाइयो, आप लोगों ने मुझ पर जो कृपा-भाव दिखलाया है, उसके लिये कृतज्ञता प्रकट करना मेरे लिये कठिन है। अथवा आप लोगों को धन्यवाद देना ही काफी है। आप लोग मेरे भाई हैं, वास्तव में भाई का ही कार्य किया है। क्योंकि इस तरह का पारिवारिक बन्धन, इस तरह का सम्पर्क, इस तरह का प्रेम मेरी मातृ भूमि की सीमा के बाहर और कहीं पर नहीं है।

यह शिकागो का सर्वधर्म सम्मेलन एक बहुत बड़ी बात हुई है, इस में सन्देह नहीं। भारत के बहुत से नगरों से हम लोगों ने इस सभा के कर्ता धर्ता लोगों को धन्यवाद दिया है। वे लोग हम लोगों के प्रति दया दिखलाने के कारण धन्यवाद के पात्र भी हैं। किन्तु इस धर्म-सम्मेलन का यथार्थ इतिहास अगर आप जानना चाहते हैं यथार्थ उद्देश्य जानना चाहते हैं तो मुझ से सुनो। उन लोगों की इच्छा अपने धर्म का प्रभुत्व स्थापित करने की थी। वहाँ के बहुत से लोगों की इच्छा थी कि ईसाई धर्म का गौरव दिखलाकर दूसरे धर्म का मज़ाक उड़ाया जाय। कार्य रूप में उन की इच्छा के अनुरूप न होकर अन्य रूप में हुआ। विधि विधान से वैसा न होने का मौक़ा ही नहीं मिला। बहुतों ने हमारे प्रति सदय व्यवहार किया था, उन लोगों को काफ़ी धन्यवाद दिया गया है।

शिकागों धर्म सम्मेलन का यथार्थ इतिहास

वास्तविक बात यह है कि मेरी अमेरिका यात्रा धर्म-सम्मेलन के लिये नहीं हुई थी। यद्यपि इस सम्मेलन के द्वारा मेरा रास्ता बहुत कुछ साफ़ हुआ और कार्य को बहुत कुछ सुविधा हुई, इसके लिये मैं भी उक्त महासभा के सभ्यों का विशेष कृतज्ञ हूँ। लेकिन अगर सच बात कही जाय तो हमारे धन्यवाद के पात्र युक्तराज्य के वे सहृदय, अतिथि-सत्कार करनेवाले उन्नतमना अमेरिकन हैं, जिनमें और

सहृदय अमेरिकन जाति

जातियों की अपेक्षा भ्रातृ भाव विशेष रूप से पाया जाता है। किसी अमेरिकन से रेलगाड़ी में पाँच मिनट तक भी बात चीत होने से वह आप का मित्र हो जायगा और आपको निमंत्रित करके अपने घर ले जायगा और अपने दिल की बात साफ साफ कह देगा। यही अमेरिकनों का लक्षण है, यही उनका परिचय है। उन्हें धन्यवाद देना हम लोगों का कर्म नहीं है। उनकी हम लोगों पर दया वर्णनातीत है, हम पर उन लोगों ने जैसा अपूर्व दया भाव प्रकट किया था, उसे कहते मुझे बहुत वर्ष लगेगा।

लेकिन केवल अमेरिकनों को ही धन्यवाद देने से न चलेगा, वे जितने धन्यवाद के पात्र हैं, उतने ही धन्यवाद के पात्र अटलांटिक महासागर के दूसरे छोर पर बसे हुए अंग्रेज लोग हैं। अंग्रेज जाति पर मुझ से अधिक घृणा का भाव लेकर कभी किसी ने बृटिशद्वीपों में पदार्पण नहीं किया था। इस प्लैटफार्म पर जो अंग्रेज भाई मौजूद होंगे, वे ही इसकी गवाही देंगे। लेकिन जितना ही मैं उनके साथ रहने लगा, उतने ही उनके साथ हिल
मिल गया। जितना ही मैं देखने लगा कि
भावों को छिपाने में अंग्रेज जाति का जीवन-यंत्र किस रूप
अभ्यस्त अंग्रेज जाति में परिचालित होता है, ज्यों ज्यों यह
समझने लगा कि इस जाति का कहाँ
पर हृदय स्पन्दित होता है, त्यों त्यों उन्हें प्यार करने लगा। और मैं यहां तक कहने का दावा रखता हूं कि यहाँ पर जितने लोग हैं उन में से कोई भी मुझ से अधिक अंग्रेज

जाति को प्यार नहीं करता होगा। उनकी बातों को ठीक ठीक समझने के लिये वहाँ पर क्या क्या बातें होती हैं, उन्हें देखना, होगा और उनके साथ मिलना भी होगा। हमारे दर्शन शास्त्र, वेदान्त ने जिस प्रकार सब दुःखों का कारण हमारा अज्ञान बतलाया है, उसी प्रकार अंग्रेजों और हम लोगों के बीच का विरोध भाव भी समझना चाहिये। हम लोग उन्हें जानते नहीं हैं और न वे ही हम लोगों को जानते हैं।

अज्ञान ही प्राच्य और पाश्चात्त्य जातियों के आपसी झगड़े का कारण है

दुर्भाग्य से पाश्चात्य देशवासियों की यह धारणा है कि आध्यात्मिकता; यही क्यों, नीति तक सांसारिक उन्नति के साथ सम्बद्ध है। और जभी कोई अंग्रेज या दूसरा कोई पाश्चात्य देशवासी भारतवर्ष में आता है और देखता है कि यहाँ पर दुःख दरिद्र का ही साम्राज्य है तो वह यह सिद्धान्त निश्चित कर लेता है कि यहाँ पर धर्म को कौन कहे नीति तक भी नहीं है। उनकी जानकारी तो अवश्य ही ठीक है। योरप के शीत प्रधान जल वायु तथा अन्यान्य कारणों से वहाँ पर दरिद्रता और पाप एकत्र दिखलाई पड़ते हैं, किन्तु भारतवर्ष के संबन्ध में वह ठीक नहीं है। मेरी अभिज्ञता यह है कि भारतवर्ष में जो जितना ही दरिद्र है, वह उतना ही साधु है, किन्तु इसके समझने में समय लगेगा। कितने विदेशी लोग हैं जो भारतवर्ष के जातीय जीवन के इस गुप्त रहस्य को समझने के लिये दीर्घ काल तक यहाँ पर रह

कर अपना समय देने को तैयार हैं ? बहुत थोड़े लोग मिलेंगे जो इस जाति के चरित्र के चरित्र को धैर्य के साथ अध्ययन करने और समझने को तैयार हों। केवल इसी स्थान पर ऐसी जाति रहती है जिसको दरिद्रता और पाप समानार्थी नहीं जान पड़ते। केवल यही नहीं, दरिद्रता को यहाँ पर अत्यन्त उच्च स्थान दिया गया है। यहाँ पर दरिद्र सन्यासी को ही सर्व श्रेष्ठ आसन दिया गया है, इसी प्रकार हम लोगों को भी धैर्य के साथ उनके सामाजिक राजनीति को अध्ययन करना चाहिये। उनके संबंध में यकायक कोई सिद्धान्त ठहरा लेना ठीक नहीं। उनके स्त्री पुरुष का मिलना जुलना तथा अन्यान्य आचार व्यवहारों का अर्थ है सभी अच्छी दशा में है, केवल तुम्हें ही यत्नपूर्वक धैर्य के साथ उनकी आलोचना करनी होगी। मेरा ऐसा कहने का यह भाव नहीं कि हम लोग उनके आचार व्यवहार का अनुकरण करें अथवा वे लोग हम लोगों का अनुकरण करें। सभी देशों के आचार व्यवहार सैकड़ों शताब्दियों से अत्यन्त मन्द गति से विकसित होने का परिणाम है। और सभी का गम्भीर अर्थ है। इसलिये हम लोग भी उनके आचार व्यवहारों का मजाक न उड़ायें और न वे ही लोग हम लोगों की हँसी उड़ायें।

मैं इस सभा के समक्ष और एक बात कहने की इच्छा करता हूँ। मेरी राय में अमेरिका की अपेक्षा इंगलैंड में मेरा प्रचार कार्य अधिक सन्तोष जनक हुआ है। निर्भीक, दृढ़, अध्यवसायशील अंग्रेज जाति के मस्तिष्क में यदि कोई एक बार प्रवेश कर

मेरी राय में इंग्लैंड में मेरा प्रचार-कार्य अधिक स्थायी होगा

दिया जाता है (उनका मस्तिष्क यद्यपि और जातियों की अपेक्षा स्थूल होता है, सहज ही कोई भाव उसमें प्रवेश नहीं करता, लेकिन यदि प्रयत्न द्वारा उस में कोई भाव प्रवेश करा दिया जाय) तो वह उनके मस्तिष्क में ठहरता है, कभी बाहर नहीं निकलता, और उस जाति की असीम कार्यकारिणी शक्ति के बल से उस बीज रूपी भाव से अंकुर निकल कर शीघ्र ही फल भी उत्पन्न तो होने लगता है। और किसी देश में ऐसा नहीं होता। इस जाति में जैसी अपरिमित कार्य करने की शक्ति है, इस जाति की जैसी अनन्त जीवनी शक्ति है, वैसी और किसी जाति में नहीं पाई जाती। इस जाति में कल्पना-शक्ति तो थोड़ी है, पर कार्य करने की शक्ति अथाह है अंग्रेजों के हृदय का गुप्त सोता कहाँ है, उसे कौन जान सकता है? उनके हृदय के गम्भीर प्रदेश में जो कल्पनायें और भाव छिपे हुए हैं, उसे कौन बतला सकता है? वह वीरों की जाति है, वे असल क्षत्रिय हैं, उनकी शिक्षा ही भाव को गुप्त रखने की है, वह कभी दिखलाई नहीं पड़ती। लड़कपन ही से उन्होंने यह शिक्षा पाई है। आपको बहुत कम अंग्रेज मिलेंगे जो अपने हृदय के भाव को कभी प्रकट करते हों। केवल पुरुष ही नहीं, स्त्रियाँ तक अपने हृदय के भावों को प्रकट नहीं करतीं। मैंने अंग्रेज रमणियों को ऐसे कार्य करते हुए देखा है, जिसे करने में अत्यन्त साहसी बंगाली भी हिच-

केंगे। किन्तु उस वीरत्व की भी भित्ति के पीछे, इस क्षत्रिय सुलभ कठिनता के अन्तराल में अंग्रेजों के हृदय की भावराशि का सोता छिपा हुआ है। अगर आप एक बार उसके पास पहुँच जाँय, अगर एक बार अंग्रेजों के साथ आप की घनिष्ठता हो जाय, अगर उनके साथ मिलें, अगर एक बार उनसे अपने हृदय का भाव कहलवालें, तो वह आपके चिर मित्र, आपके चिरदास बन जाँयगे। इसी कारण से मेरी राय में, और जगहों की अपेक्षा इंग्लैंड में मेरा प्रचार कार्य अधिक सन्तोष जनक हुआ है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि कल ही मेरा शरीर छूट जाय, तो भी इंग्लैंड में मेरा प्रचार कार्य अक्षुण्ण रहेगा और क्रमशः बढ़ता जायगा।

सज्जनो, आप लोगों हमारे हृदय की एक और तंत्री—सब से अधिक गम्भीर तंत्री को आघात किया है। आपने मेरे आचार्य, मेरे जीवन के आदर्श, मेरे इष्ट, मेरे देवता श्रीरामकृष्ण परमहंस का नाम लिया है। अगर मनसा, वाचा कर्मणा, मैंने कोई सत्कार्य किया है अगर मेरे मुँह से ऐसी कोई बात निकली है जिससे किसी व्यक्ति का उपकार हुआ हो तो उसके लिये मेरा कोई गौरव नहीं, वह उन्हीं का है। लेकिन अगर मेरी जिह्वा कभी गाली दे, अगर मेरे मुँह से कभी किसी के प्रति घृणा-सूचक वाक्य या अभिशाप निकले तो उसे मेरा समझना चाहिये, उनका नहीं।

मेरे आचार्य श्रीरामकृष्ण परमहंस

जो कुछ दुर्बलता, दोष मुझ में दिखलाई पड़े, वह सब मेरा है। पर मुझ में जो कुछ जीवन प्रद हो, जो कुछ बलप्रद हो, जो कुछ पवित्र हो, सब उन्हीं की शक्ति का करामात समझना चाहिये। भाइयो, संसार ने अब भी उन नर-देव को पहचाना नहीं है। हम लोग संसार के इतिहास में सैकड़ों महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़ते हैं। इस समय हम लोग जिस रूप में उन जीवनियों को पाते हैं, उनमें सैकड़ों वर्षों से उनके शिष्यों के द्वारा बढ़ा चढ़ा रद्दोबदल पाया जाता है। सहस्रों वर्षों से इन प्राचीन महापुरुषों के जीवन चरित को काटकूट, ठीक ठीक करके इस रूप में किया गया है लेकिन तौ भी जिस जीवन को मैंने अपने नेत्रों से देखा है; जिसकी छाया में मैंने निवास किया है, जिसके चरण तले बैठकर सब कुछ सीखा है, उस रामकृष्ण परमहंस का जीवन जितना उज्ज्वल, और महिमापूर्ण है, वैसा और किसी महापुरुष का न होगा. ऐसी मेरी धारणा है।

भाइयो, आप सभी गीता में कही हुई भगवान कृष्ण की प्रसिद्ध वाणी को जानते ही होंगे—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहं।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।

४—७—८

"जब जब धर्म की ग्लानि और अधर्म की वृद्धि होती

है तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ। साधुओं की रक्षा करने और दुष्टों का नाश करने के लिये तथा धर्म की संस्थापना करने के लिए मैं युग युग में जन्म ग्रहण करता हूँ।"

इसके साथ ही और एक बात आप लोगों को समझानी होगी। आज हम लोगों के सामने वैसी वस्तु विद्यमान है। इस तरह की धर्म की धारा प्रबल वेग से आने के पहले समाज में सर्वत्र छोटी छोटी तरंग परम्पराओं का आभिर्भाव दिखलाई पड़ता है। इनमें से एक तरंग—जिसके अस्तित्व का पहले किसी को पता नहीं था, और जिसकी गूढ़ शक्ति के सम्बन्ध में किसी ने स्वप्न में भी कुछ सोचा ही था—क्रमशः प्रबल होती जाती है और दूसरी छोटी छोटी तरंगों को मानो ग्रसित करके, अपने में मिला लेती है। इस प्रकार वह बहुत बड़े आकार में होकर नदी के रूप में परिणत हो जाती है और समाज के ऊपर इस प्रकार गिरती है कि कोई उसके वेग को सँभाल नहीं पाता। ऐसी ही बात इस समय हो रही है। यदि आप के आँखें हों तो आप उसे देख सकेंगे, अगर आप के हृदय का द्वार खुला है, तो आप उसे ग्रहण करेंगे, अगर आप सत्यान्वेषण के इच्छुक हों तो आप को उसका पता चलेगा। वह पुरुष बिल्कुल अन्धा है जो समय की गति को न देखता है, न समझता है। क्या देख नहीं रहे हो कि दरिद्र ब्राह्मण पिता-माता का दूर का उत्पन्न यह

महाशक्ति के आधार
श्री रामकृष्ण

सन्तान इस समय उन देशों में सचमुच पूजा जा रहा है जो आज सैकड़ों शताब्दियों से मूर्तिपूजा के विरुद्ध गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहे हैं। यह किसकी शक्ति है? यह तुम्हारी शक्ति या हमारी? नहीं, यह किसी की शक्ति नहीं है। जो शक्ति यहाँ पर रामकृष्ण परमहंस के रूप में आविर्भूत हुई थी, यह वही शक्ति है। क्योंकि तुम, हम, साधु, महापुरुष, यहाँ तक कि सारा ब्रह्माण्ड ही शक्ति का विकाश मात्र है, कहीं पर उसका कम विकाश है, कहीं पर अधिक। इस समय हम लोग उस महाशक्ति के खेल का आरंभ मात्र ही देखते हैं। और वर्तमान युग का अन्त होने के पहले ही तुम इस खेल को अत्यन्त आश्चर्य-जनक खेल को प्रत्यक्ष करोगे। भारतवर्ष के पुनरुत्थान के लिये इस शक्ति का विकाश ठीक समय पर ही हुआ है। हम लोग जिस मूल जीवनी शक्ति के द्वारा भारत को सदा जीवित रखेंगे, इस बात को कभी कभी भूल जाते हैं!

प्रत्येक जाति के उद्देश्य सिद्धि करने की भिन्न भिन्न कार्य-प्रणाली होती है। कोई राजनिति, कोई समाज सुधार और कोई दूसरे ही कुछ को प्रधान मानकर कार्य करता है। हम लोगों को धर्म को छोड़कर कार्य करने का दूसरा साधन ही नहीं है। अंग्रेज लोग राजनीति की सहायता से धर्म को समझते हैं। वैसे ही अमेरिकन लोग समाज-सुधार की सहायता से सहज ही धर्म को समझ सकते हैं किन्तु हिन्दू—राजनीति, समाज-सुधार तथा और सभी वस्तुओं को धर्म के अन्तर्गत न करने से समझ ही

नहीं सकते हैं। जातीय जीवन संगीत का मानो यही प्रधान सुर है, और सब मानो इसी का परिवर्तित रूप है। इसी के नष्ट होने की आशंका हुई थी। हम लोग मानो अपने जातीय जीवन के इस मूल भाव को हटा कर उसके स्थान में एक और को स्थापित करने जा रहे थे। हम लोग मानो जिस मेरु दंड के बल पर खड़े हैं, उसके स्थान पर एक और खड़ा कर रहे थे, अपने जातीय जीवन के धर्म रूपी मेरु दंड के स्थान पर हम लोग राजनीति रूपी मेरु दंड को स्थापित करने जा रहे थे। यदि हम लोग सफल होते तो इसका फल हम लोगों का सर्वनाश होता। लेकिन यह तो होने वाला नहीं। इसी से इस महाशक्ति का आविर्भाव हुआ था। इस महापुरुष को आप चाहे जिस भाव से देखें, उसे मैं महत्व नहीं देता। उन्हें आप लोग चाहे जितनी श्रद्धा भक्ति से देखें, इससे कुछ नहीं होता जाता। लेकिन मैं आप लोगों से जोर देकर कहता हूँ कि पिछली कई शताब्दियों से भारत में इस प्रकार की अद्भुत महाशक्ति का विकाश नहीं हुआ। और आप लोग जब हिन्दू हैं तो इस शक्ति के द्वारा केवल भारतवर्ष ही की नहीं, किन्तु सम्पूर्ण मनुष्य जाति की उन्नति और कल्याण किस तरह हो रहा है, इसे जानने के लिए इस शक्ति के सम्बन्ध में आलोचना करके इसे समझने का प्रयत्न करना कर्तव्य है। संसार के किसी देश में सार्व भौम धर्म तथा विभिन्न सम्प्रदायों में भ्रातृभाव की बात उठने और आन्दोलन होने के बहुत पहले ही इसी नगर के पास ही एक

ऐसा पुरुष था, जिसका सारा जीवन ही एक आदर्श महासभा का स्वरूप था।

सज्जनो, हमारे शास्त्रों ने निर्गुण ब्रह्म ही को हम लोगों का अन्तिम लक्ष्य माना है। और ईश्वर की इच्छा से यदि सभी लोग उस निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करने में समर्थ होते, तो बड़ा अच्छा होता। लेकिन जब ऐसा सम्भव

एक सगुण आदर्श की आवश्यकता

नहीं तो हम मनुष्य जाति के लिए एक सगुण आदर्श के होने से एक दम काम नहीं चल सकता। इस प्रकार किसी आदर्श महापुरुष का विशेष अनुरागी होकर उसके झण्डे के नीचे खड़े हुए बिना कोई जाति उठ नहीं सकती और न बड़ी हो सकती है। यहाँ तक कि कार्य भी नहीं कर सकती। राजनैतिक, यहाँ तक कि सामाजिक वा व्यापारिक जगत का भी कोई आदर्श पुरुष कभी सर्वसाधारण भारतवासियों के ऊपर प्रभाव नहीं डाल सकता। हम लोग चाहते हैं आध्यात्मिक आदर्श। उन्नत अध्यात्म राज्य के पारदर्शी महापुरुषों के नाम पर हम लोग एकत्र सम्मिलित होना चाहते हैं, सभी मत्त होना चाहते हैं। धर्मवीर हुए बिना हम लोग किसी को आदर्श नहीं मान सकते। 'रामकृष्ण परमहंस में हम लोग एक ऐसे ही धर्मवीर—ऐसे ही एक आदर्श को पाते हैं। यदि यह जाति उठना चाहती है, तो मैं निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि इस नाम पर सब को मतवाला होना चाहिये। रामकृष्ण परमहंस के सम्बन्ध में मैं, तुम या दूसरा

कोई कुछ प्रचार करे उससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। मैंने इस आदर्श पुरुष को आप लोगों के सामने रखा है। अब विचार करने का भार आप लोगों पर है। इस महान् आदर्श पुरुष को लेकर क्या करेंगे, अपने जातीय कल्याण के लिए, आप लोगों को याद रखना आवश्यक है, आपने जितने महापुरुषों को देखा है, अथवा स्पष्ट करके कहता हूँ, जितने महापुरुषों के जीवन चरित को पढ़ा है, इनका जीवन उन सब से पवित्र था। और यह तो स्पष्ट ही देख रहे हैं कि इस तरह के अत्यन्त अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति के विकाश की कथा आप लोगों ने पढ़ी न होगी, देखने की तो बात ही दूर है। उनको मरे हुए अभी दस वर्ष ही हुए, इतने ही में उस शक्ति ने संसार को ढक लिया है, इसे आप लोग प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं। सज्जनो ! इस कारण से हमारे जातीय कल्याण के लिए, हमारे धर्म की उन्नति के लिए कर्तव्य बुद्धि से प्रेरित होकर मैं इस महान् आध्यात्मिक आदर्श को आपके सामने रखता हूँ। मुझे देख कर उसका विचार न करना। मैं तो एक क्षुद्र प्राणी हूँ। मुझे ही देखकर उनके चरित्र का विचार न करना। उनका चरित्र इतना उन्नत था कि मैं अथवा उनका दूसरा कोई शिष्य यदि सैकड़ों जीवन धारण कर प्रयत्न करे तो भी वह वास्तव में जो कुछ थे, उनके करोड़वें भाग की भी बराबरी नहीं कर सकते। आप ही विचार कीजिए, आपके हृदय में वही सनातन साक्षी रूप में वर्तमान है, और मैं हृदय से प्रार्थना करता हूँ रामकृष्ण परमहंस ने हमारी जाति के

कल्याण के लिए, हमारे देश की उन्नति के लिये, सम्पूर्ण मानव जाति के हित के लिए आपके हृदय को खोल दिया। और हम लोग चाहे कुछ करें अथवा न करें, जो महा युगान्तर अवश्यम्भावी है, उसकी सहायता के लिए आपको निष्कपट और दृढ़ व्रती करें। आपको अथवा हमें अच्छा लगे अथवा न लगे, इसके बिना ईश्वर का कार्य रुक नहीं सकता। वह साधारण धूल से अपने कार्य के लिए सैकड़ों हज़ारों कार्यकर्त्ताओं की सृष्टि कर सकते हैं। उनके अधीन रह कर कार्य करना तो हम लोगों के लिए अत्यन्त सौभाग्य और गौरव की बात है।

क्रमशः यह भाव चारों तरफ फैलने लगा है। आप लोगों ने कहा है कि हम लोगों को सम्पूर्ण संसार को जीतना होगा। हाँ, यह तो हम लोगों को करना ही होगा। भारत को अवश्य ही संसार पर विजय प्राप्त करना होगा। इससे नीचे आदर्श से मैं कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। आदर्श भले ही अच्छा हो सकता है, आप लोगों को उसे सुनकर आश्चर्य भी हो सकता है तो भी इसे ही हम लोगों को अपना आदर्श बनाना पड़ेगा। या तो हम लोगों को सम्पूर्ण जगत को जीतना पड़ेगा अथवा मर जाना पड़ेगा, इसे छोड़ कर दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। विस्तार ही जीवन का चिन्ह है। हम लोगों को क्षुद्रता, संकुचितता को छोड़ना पड़ेगा। हृदय का विस्तार करना पड़ेगा, हम लोगों में जो जीवन

हम लोगों का आदर्श सम्पूर्ण जगत पर विजय प्राप्त करना है।

है, उसे प्रकट करना पड़ेगा, नहीं तो हम लोग हीनावस्था में पड़ कर नष्ट हो जायँगे, दूसरा कुछ उपाय ही नहीं है। दो में से एक करो, या तो बचो अथवा मरो।

हमारी वैदेशिक नीति
Foreign Policy

आप लोगों से छिपा हुआ नहीं है, कि हमारे देश में मामूली मामूली बातों को लेकर झगड़ा हो जाता है। लेकिन मेरी बात सुनिए, यही दशा सभी देशों की है। जिन जातियों की रीढ़ राजनीति ही है, वे जातियाँ आत्मरक्षा के लिए वैदेशिक नीति का अवलम्बन करती हैं। जब उनके देश में आपस में गृह-विवाद आरंभ होता है, तब वे किसी विदेशी जाति के साथ विवाद की सूचना देती हैं, इतने में गृह-कलह बन्द हो जाता है। हम में गृह-कलह है, किन्तु उसे रोकने के लिए, कोई वैदेशिक नीति नहीं है। संसार की सभी जातियों में अपने शास्त्रों के सत्य का प्रचार करना ही हम लोगों की वैदेशिक नीति होवे। यह हम लोगों को एक अखंड जाति के रूप में मिला देगा, इसके लिए क्या प्रमाण की जरूरत है? आप लोगों में से जिन्हें राजनीति में खास दिलचस्पी है, उनसे मैं यह प्रश्न पूछता हूँ। आज की सभा ही इसका सबसे बढ़िया उदाहरण है।

दूसरे इन सब स्वार्थ के विचारों को छोड़ देने पर भी हम लोगों के पीछे निःस्वार्थ, महान् जीते जागते उदाहरण हैं।

विदेश में धर्म प्रचार द्वारा ही हमारी संकीर्णता दूर होगी।

भारत के पतन और दुःख दरिद्रता का मुख्य कारण यह है कि उसने अपने कार्यक्षेत्र को संकुचित कर लिया था। वह शामुक की तरह दरवाजा बन्द कर के बैठ गया था, उसने आर्येतर दूसरी सत्य की इच्छा रखने वाली जातियों के लिए अपने रत्नों के भंडार को—जीवन-प्रद सत्यरत्नों के भंडार को—खोला नहीं। हम लोगों के पतन का सब से मुख्य कारण यही है हम लोग बाहर जाकर जातियों के साथ अपनी तुलना नहीं की। आप लोग सभी जानते हैं कि जिस दिन से राजा राममोहन राय ने इस संकीर्णता को दूर हटाया उसी दिन से आज भारत में जो एक जीवन, जो हलचल दिखलाई पड़ रही है, उसका श्री गणेश हुआ। उसी दिन से ही भारतवर्ष के इतिहास ने अन्य मार्ग अवलम्बन किया है और भारत इस समय क्रमशः उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। भूतकाल में यदि छोटी-छोटी नदियाँ दिखलाई पड़ती थीं तो इस समय वह महानदी के रूप में परिणत हो गई हैं और कोई उनकी गति को रोक नहीं सकता। इसलिए हम लोगों को विदेश जाना पड़ेगा।

आदान प्रदान ही अभ्युदय का मूल मंत्र है। क्या हम लोग चिरकाल तक विदेशियों के चरण तले बैठकर सब बातें, यहाँ तक कि, धर्म की भी शिक्षा ग्रहण करेंगे ? हम लोग उनसे कल, मेशीनरी की बातें तो अवश्य सीख सकते हैं, और भी बहुत सी

बातें उनसे सीख सकते हैं, लेकिन हम लोगों को भी उन्हें कुछ सिखाना होगा! हम लोग उन्हें अपना धर्म, अपनी गम्भीर आध्यात्मिकता सिखायेंगे। संसार पूर्णाङ्ग सभ्यता की इन्तजारी कर रहा है। अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार रूप में भारत ने जो धर्म रूपी अमूल्य रत्न प्राप्त किया है, उसे पाने के लिये संसार सतृष्ण नेत्रों से देख रहा है। हिन्दू जाति सैकड़ों वर्षों से, अवनति और दुर्भाग्य चक्र में पड़ते हुए भी, जिसे अपने हृदय में धारण किये हुए है, संसार उसी की ओर निगाह लगाये हुए है।

पाश्चात्य जातियों से केवल सिखने ही से न चलेगा, कुछ सिखलाना भी होगा

आपके पूर्वजों के उस अपूर्व रत्न राशि के लिये भारत के बाहरी देश वाले किस प्रकार उत्कंठित हैं, इसे आप लोग किस प्रकार समझ सकते हैं? हम लोग यहाँ पर अनर्गल बकते हैं, आपस में झगड़ा करते हैं, जो गम्भीर और श्रद्धा की बातें हैं, उनका उपहास करते हैं। इस समय इस प्रकार का उपहास करना एक जातीय पाप हो रहा है। लेकिन हमारे पूर्वज इस भारत में जो संजीवनी बूटी रख गये हैं, उसके एक कण को पाने के लिये बाहर के देशवासी लाखों स्त्री पुरुष किस प्रकार आग्रह के साथ हाथ बढ़ाये हुए हैं, उसे हम लोग किस प्रकार समझ सकते हैं? इस लिये हम लोगों को भारत के बाहर जाना पड़ेगा। हम लोगों की आध्यात्मिकता के

भारत में धर्म को

ग्रहण करने के लिये दूसरे देश वाले अत्यंत उत्सुक हैं।

बदले में वे लोग जो कुछ दे सकते हैं, उसे ही ग्रहण करना होगा। चैतन्य राज्य के अपूर्व तत्वों के बदले में हम लोग जड़राज्य के अद्भुत तत्वों को सीखेंगे। चिरकाल तक हम लोगों के शिष्य रहने से न चलेगा, हम लोगों को गुरु भी बनना पड़ेगा। जब तक बराबरी का नहीं होते, तब तक आपस में मित्रता नहीं होती। और जब तक लोगों का एक समुदाय सदा आचार्य का आसन ग्रहण करता है और दूसरा दल उसके पैरों तले बैठकर शिक्षा ग्रहण करने को उद्यत होता है, तब तक उनमें कभी समानता का भाव नहीं आ सकता। अगर आप लोग अमेरिकनों अथवा अंग्रेजों के समान बनने की इच्छा करते हैं, तो आप लोगों को जैसे उनसे सीखना है, वैसे ही सिखाना भी होगा। और अब भी सैकड़ों शताब्दियों से संसार को सिखाने के लिये आपके पास काफ़ी है। वही इस समय करना पड़ेगा।

भावुक बंगाली जाति ही सारे संसार में धर्म-प्रचार के लिये उपयुक्त है।

इस समय हृदय में उत्साह की आग जलानी होगी। लोग कहते हैं कि बंगाली जाति की कल्पना शक्ति अत्यन्त प्रखर होती है, मैं इस पर विश्वास करता हूँ। लोग भले ही हम लोगों को कल्पना-प्रिय भावुक जाति कह कर हम लोगों का मज़ाक उड़ायें लेकिन भाइयो, मैं आप लोगों से कहता हूँ कि

यह उपहास की बात नहीं है, क्यों कि हृदय के प्रबल उच्छ्वास से ही हृदय में स्फूर्ति पैदा होती है। बुद्धि और विचार शक्ति अच्छी चीज़ भले ही हो, लेकिन वह दूर तक नहीं जा सकती। भावों से ही गम्भीर रहस्यों का उद्घाटन होता है। इसलिये भावुक बंगाली जाति के द्वारा ही यह कार्य सिद्ध करना होगा।

"उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत" (कठ १। ३। १४)

"उठो, जागो, जब तक इच्छित वस्तु प्राप्त न हो, तब तक क्रमशः उसके पाने के लिये प्रयत्न करते जाओ। दम न लो।" कलकत्ता वासी नौजवानो, उठो, जागो, क्योंकि शुभ मुहूर्त आ गया है। इस समय सभी बातों की सुविधा हो गयी है। साहस धारण करो, डरो मत। केवल हमारे शास्त्रों में ही भगवान को 'अभी:' विशेषण दिया गया है। हम लोगों को 'अभी:' निर्भीक होना पड़ेगा। तभी हम लोग कार्य सिद्धि करेंगे। उठो, जागो, तुम्हारी मातृभूमि इस महा बलिदान की इच्छा कर रही है। युवकों के द्वारा ही यह कार्य सिद्ध होगा। "युवा आशिष्ठ, द्रढिष्ठ, बलिष्ठ मेधावी" इन्हीं के द्वारा ही यह कार्य सिद्ध करना होगा। और कलकत्ते में इस प्रकार के सैकड़ों, हज़ारों नवयुवक हैं। तुम लोगों ने कहा है कि मैंने कुछ कार्य किया है। यदि ऐसी बात है, तो तुम को यह भी याद रखना होगा कि मैं भी एक समय एक नगण्य बालक मात्र था। मैं भी तुम्हारी तरह कलकत्ता की गलियों में घूमता फिरता

कलकत्ता वासी नवयुवको, उठो।

था। अगर मैंने इतना किया है, तो तुम लोग मेरी अपेक्षा कितना अधिक कार्य कर सकते हो। उठो, जागो, जगत् तुम्हें आह्वान कर रहा है। दूसरे दूसरे देशों में बुद्धिबल है, धनबल है, लेकिन केवल हमारे ही देश में उत्साहाग्नि विद्यमान है। इस उत्साहाग्नि को प्रज्वलित करना होगा। इसलिये हे कलकत्ता वासी युवको, हृदय में इस उत्साहाग्नि को प्रज्वलित करके जग उठो।

यह खयाल न करो कि तुम लोग गरीब हो, तुम लोग निरसहाय हो। क्या कभी किसी ने देखा है कि कोई रुपये से मनुष्य बनता है। मनुष्य ही सदा से रुपये बनाता है। जगत में जो कुछ भी उन्नति हुई है, सभी मनुष्य की शक्ति से ही हुई है, उत्साह की शक्ति से ही हुई है, विश्वास की शक्ति से ही हुई है। तुम में से जिन्होंने उपनिषदों में सुन्दर कठोपनिषद् को पढ़ा होगा, उन्हें अवश्य ही याद होगा, कि उस राजा ने एक महा यज्ञ का अनुष्ठान कर अच्छी अच्छी चीजों को दक्षिणा में न देकर बहुत बुड्ढी, बेकार गायों का दान किया। इस उपनिषद् में लिखा है कि उस के पुत्र नचिकेता के हृदय में श्रद्धा ने प्रवेश किया। इस श्रद्धा शब्द का अंग्रेजी में अनुवाद करने के लिये मैं नहीं कहूँगा। अनुवाद करना गलती होगा। इस अपूर्व शब्द का असली अर्थ समझना बहुत कठिन है। इस श्रद्धा का प्रभाव अत्यन्त प्रबल है। नचिकेता के हृदय में

विश्वास, उत्साह और निर्भीकता से सब कुछ होता है। कठोपनिषद में यम नचिकेता का सम्वाद

श्रद्धा का उदय होते ही क्या फल हुआ उसे देखो। श्रद्धा का उदय होते ही नचिकेता के मन में पैदा हुआ, अनेकों में मैं प्रथम हूँ, अनेकों में मध्यम हूं, अनेकों में अधम कदापि नहीं हूँ। मैं भी कुछ कार्य कर सकता हूँ। उसका इस तरह आत्म-विश्वास और साहस बढ़ने लगा। उस समय जिस समस्या की चिन्ता से उसका मन डाँवाडोल होने लगा, वह उसी मृत्यु तत्व की मीमांसा करने के लिये उद्यत हुए। यम के लोक में गये बिना इस समस्या का और उपाय न था। इसलिये वह यम के घर गया। उस निर्भीक बालक नचिकेता ने तीन दिन तक यम के घर में इन्तजारी की। तुम सभी लोग जानते हो कि किस तरह यम से उसने सभी तत्वों को सीखा। हम लोगों को उसी श्रद्धा की आवश्यकता है। दुर्भाग्य से भारत से यह प्रायः लुप्त हो गई है। इसलिये हम लोगों की यह दुर्दशा हो रही है। इसी श्रद्धा को लेकर ही मनुष्य मनुष्य में भेद किया जा सकता है और किसी बात से नहीं। इसी श्रद्धा के अभाव से ही कोई बड़ा कोई छोटा होता है। मेरे आचार्य देव कहा करते थे कि जो अपने को दुर्बल समझता है, वह दुर्बल ही होगा। और यही सच्ची बात है। यही श्रद्धा तुम्हारे भीतर प्रवेश करे। पाश्चात्य जातियों ने जड़ जगत में जो आधिपत्य प्राप्त किया है, वह इसी श्रद्धा के परिणाम स्वरूप ही। वे अपने शारीरिक बल पर विश्वास रखते हैं। और तुम लोग यदि अपने आत्मा में विश्वास रखो तो इसका अद्भुत परिणाम होगा। तुम्हारे शास्त्र, तुम्हारे ऋषि, जो कुछ एक वाक्य में प्रचार करते

हैं, वह है उसी अनन्त शक्ति के आधार अनन्त आत्मा में विश्वास सम्पन्न होना जिसका कोई नाश नहीं कर सकता। उसी आत्मा में शक्तियाँ हैं केवल उन्हें जागृत करने की आवश्यकता है। इसका कारण यह है कि यहाँ पर अन्यान्य दर्शनों और भारतीय दर्शनों में विशेष भेद है। द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, अद्वैत वादी, सभी विश्वास करते हैं कि आत्मा ही में सारी शक्तियाँ विद्यमान हैं। केवल उन्हें व्यक्त करने भर की आवश्यकता है इसलिये मैं उस श्रद्धा को चाहता हूँ। हम सब लोगों के लिये इसकी आवश्यकता है; इस आत्म-विश्वास और इस विश्वास उपार्जन जैसा महान् कार्य तुम्हारे सामने पड़ा हुआ है, हमारे जातीय शोणित में एक भयानक रोग का बीज प्रवेश कर रहा है। सब बातों को हँसी में उड़ा देने वाले दोष को बिल्कुल छोड़ देना होगा। वीर बनो, श्रद्धालु बनो, जो कुछ आना होगा, आयगा ही।

मैं तो अभी कुछ कर नहीं सका हूँ, तुम लोगों को ही सब कुछ करना होगा। अगर कल ही मेरा शरीर छूट जाय, उसके साथ ही इस कार्य का अस्तित्व भी लुप्त न होना चाहिये। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जनता में से सैकड़ों हज़ारों की संख्या में
आकर इस बात को ग्रहण करेंगे और इस
मैंने जिस कार्य का सूत्र- कार्य में यहाँ तक उन्नति और विस्तार
पात किया, उसे युवकों करेंगे कि मैं कल्पना में भी उसकी आशा
को पूरा करना होगा नहीं कर सकता था। मैं अपने देश पर

विश्वास करता हूँ विशेष कर देश के युवकों पर। बङ्गाल के युवकों के कन्धे पर अत्यन्त भारी कार्य का बोझा है। आज तक कभी किसी देश के युवकों पर इतना भारी बोझा नहीं पड़ा होगा। मैं पिछले दस वर्षों से भारत में भ्रमण करता आ रहा हूँ, उससे मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि बङ्गाल के युवकों के हृदय से ही यह शक्ति प्रकाशित होगी जिससे वह भारत को उसके उपयुक्त आध्यात्मिक अधिकार दिलायेंगे। मैं निश्चय रूप से कहता हूँ कि इन हृदयवान उत्साही बङ्गाली युवकों में से सैकड़ों वीर निकलेंगे जो हमारे पूर्वजों द्वारा प्रचार किये हुए सनातन आध्यात्मिक सत्यों का प्रचार करके और शिक्षा देकर संसार के एक देश से दूसरे देश तक, एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूमेंगे।

जन साधारण में से ही महापुरुष निकलते हैं।

तुम लोगों के सामने यह महान् काम पड़ा हुआ है। इसलिये एक बार फिर तुम लोगों को यह महती वाणी 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' को स्मरण दिलाकर मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूँ। भय न करो, क्योंकि मनुष्य जाति के इतिहास को देखने से पता चलता है कि जितनी शक्ति संसार में प्रकाशित हुई हैं, वह जनसाधारण में से ही। संसार में बड़े-बड़े प्रतिभा-सम्पन्न पुरुषों ने जन्म लिया है, वे सभी प्रतिभा-सम्पन्न लोगों में से ही हुए हैं। इतिहास में जो एक बार होता है, वही फिर

घटित होगा। किसी बात से डर न करो। तुम लोग अद्भुत अद्भुत कार्य करोगे। जिस क्षण तुम्हारे हृदय में भय का संचार होगा उसी क्षण तुम शक्तिहीन हो जाओगे। भय ही सब दुखों का मूल कारण है। भय ही से बड़ा कुसंस्कार है, निर्भीक होने पर एक क्षण में ही स्वर्ग तक की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये "उत्तिष्ठत प्राप्य वरान्नि-बोधत।"

भाइयो, आप लोगों ने मुझ पर जो अनुग्रह प्रकट किया है, उसके लिये मैं फिर आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ। मैं आप लोगों को यही कहता हूँ कि मेरी इच्छा—मेरी आन्तरिक इच्छा यही है कि मैं संसार की, अपने देश वासियों की यथा-शक्ति सेवा कर सकूँ।

हमारी समर नीति

सज्जनो, सब दोषों के रहते हुए भी हम लोगों में थोड़ा बहुत साहस रह गया है। भारत से पाश्चात्य देशों में मुझे कुछ संदेश ले जाना था, मैं निर्भय चित्त से अमेरिकन और अंग्रेज़ जाति के पास सन्देश ले गया हूँ। आज का विषय आरम्भ करने के पहले, मैं आप लोगों से साहस के साथ कुछ बातें कहना चाहता हूँ। कुछ दिनों से कुछ ऐसी बातें हो गयी हैं, जो हमारे कार्य की उन्नति में विशेष विघ्न बाधा पहुँचाने की चेष्टा कर रही हैं। यहाँ तक कि अगर संभव हो तो हमें पीस डालने के लिए, हमारा अस्तित्व तक मिटा देने के लिए कोशिश करती हैं। परन्तु ईश्वर को धन्ययाद है कि ये सारी कोशिशें बेकार हो गईं। और ऐसी कोशिशें हमेशा बेकार ही होंगी। किन्तु पिछले तीन वर्षों से देख रहा हूँ कि कुछ लोगों को हमारे और हमारे कार्य के संबन्ध में बहुत सी ग़लत धारणायें हो गई हैं। जितने दिन तक मैं विदेश में था, उतने दिन तक मैं चुप लगाया था, यहाँ तक कि एक शब्द भी नहीं कहा। लेकिन अब मैं अपनी मातृभूमि में पहुँच गया हूँ।

मेरा सन्देश वाहक का कार्य

इसलिए इस सम्बन्ध में कुछ बातें कहना आवश्यक प्रतीत होता है। इन बातों का क्या परिणाम होगा, इसकी मैं ज़रा भी परवा नहीं करता। मैं लोगों के मतामत की तरफ कम ध्यान देता हूँ। चार वर्ष पहले हाथ में दण्ड कमण्डल लेकर सन्यासी के वेश में मैं आपके शहर में आया था। मैं वही सन्यासी हूँ। सारी दुनिया अब भी मेरे सामने पड़ी है।

अब और अधिक भूमिका की आवश्यकता नहीं है। जो मुझे कहना है, उसे ही कहूँगा। पहले थियोसफिकल सोसाइटी के सम्बन्ध में कुछ बातें मुझे कहनी हैं। यही कहना काफी

थियोसफिकल सोसाइटी

है कि इस सोसाइटी के द्वारा भारत की बहुत कुछ भलाई हुई है। इसके लिए प्रत्येक हिन्दू ही इनका, विशेषकर मिसेज़ एनी बिसेण्ट का कृतज्ञ रहेगा। मिसेज़ एनी बिसेंट के सम्बन्ध में यद्यपि मुझे थोड़ा ही ज्ञात है तो भी मैं जो कुछ भी जानता हूँ, उससे मैं समझ गया हूँ कि वह हम लोगों की मातृभूमि की एक सच्ची हितैषिणी हैं और वह अपनी शक्ति भर हमारे देश की उन्नति के लिए प्रयत्न करती रहती हैं। इसके लिए वास्तव में प्रत्येक भारत सन्तान उनके प्रति अनन्त कृतज्ञता के पाश में बँधी है। उनका तथा उनके सम्पर्क में रहने वाले और लोगों का ईश्वर भला करे। किन्तु थिओसिफिस्ट लोगों की सोसाइटी के संबन्ध में कहने योग्य एक और बात है। भक्ति, श्रद्धा प्रेम एक बात है और कोई व्यक्ति बिना तर्क और विचार के कुछ कहे, दूसरी

बात है। एक बात चारों तरफ़ फैल रही है कि इङ्गलैण्ड और अमेरिका में मैंने जो कुछ कार्य किया है उसमें थिओसाफिस्ट लोगों ने मेरी सहायता की है। मैं आप लोगों से स्पष्ट शब्दों में कहता हूँ कि यह बात बिल्कुल झूठ है। हम लोग इस संसार में उदार भाव और मतभेद के रहते हुए भी सहानुभूति की लम्बी चौड़ी बातें सुनते हैं। यह अच्छी बात है लेकिन हम लोग कार्य रूप में देखते हैं कि जब तक कोई आदमी दूसरे आदमी की बात पर विश्वास करता है, तब तक तो वह आदमी उसके साथ सहानुभूति रखता है। लेकिन जभी वह किसी विषय में उसके साथ मतभेद प्रकट करता है, उसी समय से सहानुभूति जाती रहती है और प्रेमभाव चला जाता है।

ब्राह्म समाज और मिशनरी

कितने ऐसे व्यक्ति हैं जिनका अपना कोई न कोई स्वार्थ रहता है। अगर किसी देश में ऐसी कुछ बात हो जिससे उनके स्वार्थ में बाधा पहुँचे तो उनके हृदय में अधिक से अधिक ईर्ष्या और घृणा पैदा होती है। उस समय वे क्या करेंगे, कुछ सोच नहीं सकते। हिन्दू लोग अपना घर खुद साफ करने की चेष्टा करते हैं, उसमें ईसाइयों को क्या नुकसान है? हिन्दू लोग प्राणपण से अपने सुधार की कोशिश करते हैं, उससे ब्राह्म समाज तथा अन्यान्य सुधारक सभाओं को क्या हानि पहुँचेगी? हिन्दुओं के सुधार चेष्टा का प्रतिद्वन्दी ये क्यों बनेंगे? ये लोग क्यों इन सब आन्दोलनों के प्रबल शत्रु

हो जायँगे ? मैं यह प्रश्न पूछता हूँ। मुझे जान पड़ता है कि उनकी घृणा और ईर्ष्या का परिमाण इतना अधिक है कि इस विषय में उनसे कोई प्रश्न करना बिल्कुल निरर्थक है।

अब पहले थियोसफिस्ट लोगों की बातें कहता हूँ। मैं चार वर्ष पहले थिओसफिकल सोसाइटी के नेता के पास गया था। उस समय मैं एक दरिद्र सन्यासी था, कोई मेरा भाई बन्धु नहीं था, सात समुद्र तेरह नदी पार करके मुझे अमेरिका जाना था, लेकिन मेरे पास कोई परिचय पत्र तक न था। मैंने स्वभावतः सोचा कि जब अमेरिकन हैं और भारत के प्रति भक्ति रखते हैं, तो वह सम्भवतः अमेरिका के किसी व्यक्ति के नाम परिचय पत्र देंगे। किन्तु उनके पास जाकर परिचय पत्र माँगने का नतीजा यह हुआ कि उन्होंने पूछा कि क्या आप मेरी सोसाइटी में शामिल नहीं हो जायँगे ? मैंने उत्तर दिया, नहीं, मैं आपकी सोसाइटी में शामिल नहीं हो सका। 'क्योंकि मैं आपके मत में विश्वास नहीं करता। उन्होंने कहा, "तब जाओ, मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सकता।' क्या मेरे लिये यही रास्ता साफ करना कहा जा सकता है ? मेरे थियोसफिस्ट भाइयों में से कोई हो तो मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या मेरे लिए यही रास्ता करना कहा जा सकता है ? जो हो, मैं मद्रास के कुछ मित्रों की सहायता से अमेरिका पहुँचा। उनमें से बहुत यहाँ पर उपस्थित हैं। केवल एक सज्जन अनुपस्थित हैं। वह है जज सुब्रह्मण्य ऐय्यर। मैं इन सज्जन के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

उनमें प्रतिभाशाली पुरुष की अन्तर्दृष्टि विद्यमान है। मैंने अपने जीवन में उनका सा विश्वासपात्र मित्र नहीं पाया। वह भारत माता के एक सच्चे पुत्र हैं। अस्तु! मैं अमेरिका पहुँचा। मेरे पास रुपया बहुत कम था और सर्व धर्म सम्मेलन आरम्भ होते होते मेरे पास जो कुछ था खर्च हो गया। इधर जाड़े की ऋतु आई। मेरे पास गर्मी के सूती कपड़े थे। एक दिन सर्दी के मारे मेरे हाथ बिल्कुल ठिठुर गये। इस अत्यन्त शीत-प्रधान देश में मैं क्या करूँ, यह सोच नहीं पाता था। इसका कारण यह था कि यदि मैं रास्ते में जाकर भीख माँगता, तो मुझे जेल की हवा खानी पड़ती। मेरे पास इतने ही पैसे रह गए थे कि उनसे मैं मद्रास के मित्रों को तार दे सकता था। थियोसफिस्टों को मेरी यह अवस्था मालूम हो गई। उनमें से एक ने लिखा, "अब शैतान शीघ्र मरेगा, ईश्वर की इच्छा से बँच गया था।" क्या यही मेरे लिये रास्ता खोलना कहा जा सकता है? मैं इस समय ये सब बातें न कहता, लेकिन आप लोगों ने ज़बर्दस्ती मुझ से कहवा ही लिया। मैंने तीन वर्षों से इस विषय में कुछ नहीं कहा। चुप्पी साधना ही मेरा मूल मन्त्र था। लेकिन आज यह मेरे मुँह से निकल ही पड़ा। सिर्फ यही नहीं। मैंने सर्व धर्म सम्मेलन में कई थियोसफिस्टों को देखा। मैं उनसे बात चीत करने तथा मिलने जुलने की कोशिश करता। लेकिन वे लोग मेरी तरफ़ जिस अवज्ञा भरी निगाह से देखते, वह मुझे अब भी याद है।

उनकी अवज्ञा भरी दृष्टि मानो यही प्रकट करती थी कि यह तुच्छ कीट पतंग है यह देवताओं के बीच में कहाँ से कूद पड़ा। आप ही बताइये, क्या इससे अधिक मेरे लिये रास्ता खोलना और क्या कहा जा सकता है? जो हो, सर्व धर्म सम्मेलन में मेरा नाम तो गया। तब से तो मुझ पर काम का बोझा ही आ पड़ा। मैं जिस शहर में जाता वहीं पर ये थिओसफिस्ट लोग मुझे दबाने की कोशिश करते। वह अपनी सोसाइटी के मेम्बरों को मेरा व्याख्यान सुनने से मना करते, अगर कोई मेम्बर मेरा व्याख्यान सुनने को आता तो उस पर ख़ूब फटकार पड़ती। क्योंकि इस सोसाइटी का यह (ऐसोटेरिक) गुप्त रहस्य है कि जो कोई उसमें योग देगा उसे केवल कुथुमी और मोरियर (वे जो कोई भी हों) से शिक्षा लेनी पड़ेगी। उनके अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष प्रतिनिधि हैं मि० जज और मिसेज़ बिसेंट। इसलिये ऐसोटेरिक विभाग में योग देने का अर्थ यह है कि अपने स्वतंत्र विचारों को एक बारगी तिलांजलि देकर बिल्कुल उसके हाथों में आत्मसमर्पण करना। मैं ऐसा नहीं कर सकता था और जो कोई ऐसा करे उसे मैं हिन्दू नहीं कह सकता। इसके बाद स्वयं थिओ-सफिस्ट लोगों में ही गड़बड़ी मची। मेरी स्वर्गीय जज में बड़ी श्रद्धा है। वह गुणवान्, सरल, निश्छल प्रतिवादी थे, वही थिओसफिस्टों के प्रतिनिधि थे। उनके साथ एनी बिसेण्ट का जो विरोध था, उस सम्बन्ध में अपनी कोई राय ज़ाहिर करने को मुझे कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि दोनों ही अपने

अपने 'महात्मा' के वाक्य को सत्य सिद्ध करने का दावा रखते थे। और आश्चर्य की वात तो यह है कि दोनों ही एक ही महात्मा के दावेदार थे। ईश्वर जाने, सत्य क्या है। वही एक मात्र विचारक हैं और जहाँ पर दोनों पक्ष के प्रमाण का पलड़ा वरावर हो वहाँ किसी को किसी एक तरफ़ होकर राय देने का अधिकार नहीं है।

इस प्रकार वे दो वर्षों तक सम्पूर्ण अमेरिका में मेरे लिये रास्ता तैयार करते रहे! इसके वाद वे दूसरे विरोधी पक्ष ईसाइयों से मिलने लगे। इन ईसाइयों ने मेरे विरुद्ध में ऐसी झूठी झूठी वातें लोगों में फैलाई थीं, जो कल्पना में भी नहीं आ सकतीं। वे प्रत्येक घर से मुझको खदेड़ने का प्रयत्न करने लगे और जो कोई मेरा मित्र वनता, उसी को मेरा शत्रु वनाने की कोशिश करते। वे सभी अमेरिकनों से कहने लगे कि इसे लाठी मारकर भगा दो और भूखों मार डालो। मुझे यह कहते हुए वहुत शर्म मालूम होती है कि हमारे देश के रहने वाले एक व्यक्ति भी इसमें शामिल थे। वह भारत के एक सुधारक और नेता कहलाते हैं। यह हर रोज़ कहते फिरते हैं कि ईसा मसीह भारत में आये हैं। ईसा मसीह क्या इसी तरह भारत में आयेंगे? क्या यही भारत के सुधार का उपाय है? मैं इन्हें वचपन से ही जानता हूँ, यह मेरे परम मित्र थे वहुत

अमेरिका में मेरे वर्षों तक मेरे साथ मेरे देश वासी मित्र
विरोधी दल के मेरे की मुलाकात नहीं हुई थी, इसलिये उन्हें

देशवासी मित्र का मिलना

देखकर मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ, मानो बैठे बिठाये मुझे स्वर्ग मिल गया। किन्तु उन्होंने ही मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया! जिस दिन सर्व धर्म-सम्मेलन में मैं प्रशंसा का पात्र समझा गया, जिस दिन चिकागो में मैं लोक-प्रिय हुई उसी दिन से ही—उसी दिन से उनका सुर बदल गया और वह छिपे तौर पर मेरा अनिष्ट करने, मुझे भूखों मार डालने तथा अमेरिका से लाठी के बल खदेड़ देने की जी जान से कोशिश करने लगे। मैं पूछता हूँ, क्या इसी तरह से ईसा मसीह भारत में आयेंगे? मैं पूछता हूँ बीस वर्ष तक ईसा के चरणों तले बैठकर क्या हमने यही शिक्षा पाई है? हमारे बड़े बड़े सुधारक कहते हैं कि ईसाई धर्म और ईसा की शक्ति भारत का कल्याण करेगी, वह क्या इसी प्रकार होगा? हाँ, अगर उक्त सज्जन को उदाहरण स्वरूप पेश किया जाय तब तो कोई आशा नहीं दिखलाई पड़ती।

और एक बात है। मैंने समाज सुधारकों के मुख पत्र में पढ़ा कि उनका कहना है कि मैं शूद्र हूँ, वे मुझसे पूछते हैं कि

शूद्र और संन्यास

शूद्र को सन्यासी होने का कहाँ अधिकार है। इसके लिये मेरे पास यह जवाब है कि अगर आप लोग अपने पुराणों में विश्वास रखते हैं तो आपको जानना चाहिये कि मैं उसी महापुरुष का वंशधर हूँ जिसके चरणों में प्रत्येक ब्राह्मण 'यमाय धर्मराजाय चित्रगुप्ताय वै नमः' मन्त्र उच्चारण करके फूल चढ़ाता

है, और जिसके वंशधर शुद्ध क्षत्रिय हैं। ये बङ्गाली सुधारक यह समझे रहे हैं कि मेरी जाति कई उपायों से भारत की सेवा के अतिरिक्त सैकड़ों शताब्दियों से भारत पर आधा शासन करती रही है। अगर मेरी जाति को निकाल दीजिये तो भारत की आधुनिक सभ्यता का कितना अंश रह ही जाता है। केवल बङ्गाल में ही मेरी जाति से सर्व-श्रेष्ठ दार्शनिक, सर्व-श्रेष्ठ कवि, सर्व-श्रेष्ठ ऐतिहासिक, सर्व-श्रेष्ठ पुरातत्व-विद् और सर्व-श्रेष्ठ धर्मप्रचारक निकले हैं। उक्त सम्पादक को अपने इतिहास को जानना उचित था। हमारे तीन वर्णों के सम्बन्ध में उन्हें जानना मुनासिब था—उन्हें जानना चाहिये था कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीन वर्णों को सन्यासी होने का समान अधिकार है। तीनों वर्णों को वेद में समान अधिकार है। ये सब बातें प्रसंग पड़ने पर मुझे कहनी पड़ी हैं। मैंने उपरोक्त श्लोकांश केवल उद्धृत भर किया है, मुझे शूद्र कहने का कोई दुःख नहीं है। हमारे पुरुखों ने दरिद्रों पर जो अत्याचार किये थे, यह उसी का थोड़ा सा प्रतिशोध स्वरूप है।

अगर मैं अत्यन्त नीच चांडाल होता तो मुझे और भी अधिक आनन्द होता, क्योंकि मैं जिनका शिष्य हूँ एक श्रेष्ठ होने पर भी उन्होंने एक नीच जाति का घर साफ़ करने की इच्छा प्रकट की। वह आदमी इसके लिये राज़ी नहीं होता था, अब क्या किया जाय ? एक तो वह ब्राह्मण, दूसरे सन्यासी, वह आकर घर साफ़ करे, इसके लिए वह भला किस

ब्राह्मण संन्यासी और चांडाल

तरह राज़ी हो सकता ? इसलिए वह सन्नाटे की आधी रात को चुपके से उसके घर में घुस कर उसका पैखाना साफ़ करते और अपने बड़े बड़े बालों से उस स्थान पर झाड़ू लगाते। वह हर रोज़ ऐसा ही करने लगे जिससे वह अपने को सबका दास, सब का सेवक बना सकें। उसी व्यक्ति के श्री चरण मैंने अपने मस्तक पर रखे हैं वही मेरे आदर्श हैं, मैं उसी आदर्श पुरुष के जीवन का अनुकरण करने की कोशिश करूँगा।

हिन्दू लोग इसी तरह से आप लोगों तथा सर्वसाधारण की उन्नति की चेष्टा करते हैं। और वे इसमें विदेशी भावों की ज़रा भी सहायता नहीं लेते। बीस वर्ष तक पाश्चात्य सभ्यता के संसर्ग में रहने से इस तरह का चरित्र गठित हुआ है कि मित्र

सच्चे हिन्दू और सुधारक

का कुछ नाम हो गया, वह उनके धन कमाने के रास्ते में विघ्न रूप हो गया है, यह समझ कर उसे भूखों मारने की कोशिश करने लगे। सच्चा पुराना हिन्दू धर्म किस तरह काम करता है, यह उनका दूसरा उदाहरण है। हमारे समाज संस्कारकों में किसमें वह जीवन दिखलाई पड़ता है। अगर कोई 'नीच जाति' का पैखाना साफ करने और उसे अपने बालों से झाड़ू लगावे तो मैं उसके चरणों में अपने मस्तक रख दूँगा। उसका उपदेश सुनने को तैयार हूँगा। लेकिन इसके पहले नहीं। हज़ारों लम्बी चौड़ी बातों से एक काम का मूल्य कहीं अधिक है।

अब मैं मद्रास की सुधारक-सभाओं की कथा कहूँगा। उन्होंने मेरे प्रति बड़ी दयालुता का व्यवहार किया है। उन्होंने मेरे लिये बड़ी मीठी मीठी बातें कहीं हैं। और बंगाल प्रान्त और मद्रास प्रान्त के सुधारकों में जो भेद है, इस सम्बन्ध में मेरा ध्यान आकर्षित किया है। और इस विषय में मैं उनके साथ सहमत हूँ। आप में से बहुतों को याद होगा कि मैंने आप लोगों से कई बार कहा है कि इस समय मद्रास की बड़ी सुन्दर अवस्था है। बंगाल में जिस तरह क्रिया प्रतिक्रिया होती रही है, यहाँ पर वैसा नहीं है। यहाँ पर बराबर धीरे धीरे निश्चित गति से सभी बातों में उन्नति होती रही है, यहाँ पर क्रमशः समाज का विकास हुआ है, किसी तरह की प्रतिक्रिया नहीं हुई है। कई स्थानों पर और बहुत परिमाण में बंगाल प्रांत की उन्नति हुई कहा जा सकता है, किन्तु मद्रास में धीरे धीरे स्वाभाविक तरह से उन्नति हो रही है। इसलिए यहाँ से सुधारक लोगों ने दोनों जातियों में जो भेद दिखलाया है, इस विषय में मैं उनसे बिल्कुल सहमत हूँ। लेकिन मेरे साथ एक बात में उनका मतभेद है, इसे उन्होंने समझा नहीं है। मुझे आशंका होती है कि बहुत सी सुधारक सभायें मुझे डरा कर अपना साथ देने के लिए कोशिश करती हैं। उनके लिए ऐसा कोशिश करना बड़े आश्चर्य की बात है। जो व्यक्ति चौदह वर्ष तक अन्नाहार और मृत्यु के साथ युद्ध करता

मद्रास की सुधारक सभायें

रहा है, जिस आदमी के लिए इतने दिन तक कल क्या खाऊँगा, कहाँ सोऊँगा, इसका कोई ठिकाना नहीं रहा है, उसे इतनी जल्दी भय दिखाना सहज नहीं है। जो व्यक्ति बिना काफी कपड़े के तापमान यंत्र के शून्य अंश से ३० अंश नीचे की ठंडक में रहने का साहस कर चुका है, जिसको वहाँ भी कल क्या खाना मिलेगा, इसका भी ठिकाना न था, उसे भारत में इतना जल्दी भय नहीं दिखाया जा सकता। मैं उनसे पहले ही कहना चाहता हूँ कि वे समझे रहें, मुझ में थोड़ी बहुत दृढ़ता है, मुझे थोड़ी बहुत जानकारी भी है और संसार के लिए मुझे कुछ सन्देश देना है। मैं निर्भय होकर और भविष्य की कुछ चिन्ता न कर उस संदेश को पहुँचाऊँगा।

संस्कारकों से मैं कहना चाहता हूँ कि मैं उनसे बढ़ कर सुधारक हूँ। वे एक आध सुधार करना चाहते हैं, मैं आमूल सुधार चाहता हूँ। हम लोगों में भेद केवल प्रणाली में है। उनकी प्रणाली तोड़ फोड़ करना है और मेरा संगठन है। मैं संस्कार में विश्वास नहीं करता, मैं स्वाभाविक उन्नति में विश्वास रखता हूँ। मैं अपने को ईश्वर के स्थान पर बैठाकर समाज को 'इधर तुम्हें चलना होगा, उधर नहीं।' ऐसा आदेश देने का मैं साहस नहीं करता। मैं गिलहरी की तरह होना चाहता हूँ जिसने रामचन्द्र के सेतु बाँधने के समय अपनी शक्ति भर एक आँजुल बालू डाल कर अपने को

मेरे सुधार की प्रणाली विनाश नहीं सङ्गठन है

कृतार्थ समझा था। यही मेरा भाव है। यह अद्भुत जातीय यन्त्र सैकड़ों शताब्दियों से कार्य करती आ रही है; यह जातीय जीवन नदी हम लोगों के सामने बह रही है, कौन जानता है, कौन साहस करके कह सकता है कि यह अच्छा है या बुरा, और किस तरह से उसकी गति का नियमित होना उचित है। हजारों घटना चक्रों ने उसे विशेष रूप से वेग प्रदान किया है, इसी से समय समय पर वह तेज और मन्द चाल वाली हो जाती है। कौन उसकी गति को नियमित करने का साहस कर सकता है? गीता के उपदेशानुसार हम लोगों को सिर्फ काम करना होगा फलाफल की ओर जरा भी निगाह न डालकर शान्त चित्त से रहना होगा। उसकी पुष्टि के लिए जो आवश्यक है, वह उसे दिये जाओ, लेकिन वह अपनी प्रकृति के अनुसार अपनी देह को गठित कर लेगा, किसी में यह शक्ति नहीं कि वह यह हुक्म देवे कि इस तरह से तुम अपनी देह का गठन करो।

पाश्चात्य और प्राच्य समाज दोनों में गुण दोष मौजूद हैं

हम लोगों के समाज में काफी दोष हैं। अन्यान्य समाज में भी ऐसा ही है। यहां पर विधवाओं की आसुओं से कभी वहाँ पाश्चात्य देश की वायु अनूढा कुमारियों के दीर्घ निश्वास से विषाक्त हो रहा है। यहाँ जीवन दरिद्रता के विष से जर्जरित है, वहाँ विलासिता के अवसाद से सारी जाति जीते ही मुर्दा हो रही है। यहाँ

लोग बिना खाये आत्महत्या कर रहे हैं, वहाँ खाने पीने की सामग्री की इतनी ज्यादती होने पर भी वे आत्महत्या करते हैं। सभी जगह पर दोष मौजूद हैं। यह पुराने बात रोग की तरह है। पाँव से बात दूर होने पर सिर में समा जाता है वहाँ से दूर करने पर फिर कहीं पकड़ लेता है। केवल यहाँ से वहाँ ही उसे हटाया जा सकता है। हे बालको, अनिष्ट का मूलोच्छेद करना ही असली उपाय है। हमारे

शुभाशुभ नित्य संयुक्त है

दर्शन शास्त्रों में लिखा है कि अच्छाई बुराई नित्य संयुक्त है, एक ही वस्तु के भिन्न २ रूप हैं। एक को लेने पर दूसरे को भी लेना होगा। समुद्र में एक तरङ्ग उठे, तो समझना होगा कि कहीं न कहीं जल कम होगा। केवल यही नहीं, सारा जीवन दुःखमय है। किसी न किसी की हत्या किये बिना सांस तक नहीं ली जा सकती। एक टुकरा खाने पर भी किसी न किसी को उससे वंचित करना होगा। यही प्रकृति का अकाट्य विधान है, यही सच्चा दार्शनिक सिद्धान्त है।

इस कारण से हम लोगों को समझना होगा कि सामाजिक व्याधि को हम बाहरी प्रयत्नों से

सामाजिक व्याधि का प्रतिकार है शिक्षा

दूर नहीं कर सकते; मन के ऊपर प्रभाव डालने से ही सुधार हो सकता है। हम

जबर्दस्ती सुधार की चेष्टा नहीं हो सकती

लोग चाहे जितनी लम्बी चौड़ी बातें क्यों न करें, लेकिन जब तक हम लोग

कार्य रूप में उसे परिणत न करें तब तक कुछ लाभ न होगा। हमें समाज के दोषों को दूर करने के लिये प्रत्यक्ष रूप से प्रयत्न न कर शिक्षा के द्वारा परोक्ष भाव से उसके लिये प्रयत्न करना होगा। समाज-संशोधन के सम्बन्ध में पहले इस तत्व को समझ लेना होगा। इस तत्व को समझ कर अपने मन को शान्त करना होगा। इसे समझ कर अपने रक्त को गर्म न करना होगा—हमको उत्तेजना-रहित होना होगा। संसार का इतिहास भी हमको शिक्षा देता है कि जहाँ कहीं इस तरह की उत्तेजना की सहायता से किसी तरह के सुधार का प्रयत्न किया गया है, उसका फल यह हुआ है कि जिस उद्देश्य से सुधार का प्रयत्न किया गया है, वही उद्देश्य विफल हुआ है। अमेरिका में दासत्व प्रथा के नाश के लिये जो युद्ध हुआ था, उससे बढ़ कर मनुष्य के अधिकार और स्वाधीनता की रक्षा के लिये घोर आन्दोलन की कल्पना नहीं की जा सकती। आप लोग इसे अच्छी तरह जानते ही होंगे। लेकिन इसका फल क्या हुआ है? दास व्यवसाय का नाश होने के पहिले उनकी जो दशा थी, उससे सौ गुना खराब उनकी दशा हो गई है। गुलामी की प्रथा के बन्द होने के पहले ये अभागे निग्रो व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति समझे जाते थे। अपनी सम्पत्ति की हानि के डर से दुर्बल और अकर्मण्य न हो जाँय, इसकी तरफ गोरे मालिक सदा ध्यान रखते थे। लेकिन अब वे किसी की सम्पत्ति नहीं। उनके जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं समझा जाता है। उन्हें पकड़ कर जीते जी जला दिया है,

कहीं गोली मार दी जाती है। ऐसा करने वाले को दण्ड देने के लिये कोई भी कानून नहीं है। क्योंकि वे काले हैं, वे मनुष्य नहीं समझे जाते, यहां तक कि वे पशु कहलाने के भी योग्य नहीं समझे जाते। कानून द्वारा अथवा अत्यन्त उत्तेजना पूर्ण आन्दोलन के द्वारा किसी सामाजिक बुराई को दूर करने की कोशिश करने से कोई लाभ नहीं हो सकता।

अगर उत्तेजना में भर कर किसी शुभ कार्य को सिद्ध करने के लिये भी आन्दोलन किया जाय तो इतिहास में ऐसे आन्दोलन के विरुद्ध भी प्रमाण हैं। मैंने इसे देखा है, मैंने अपने अनुभव से इसे सीखा है। इसी कारण से मैं इस तरह दोषारोपण करने वाली किसी सभा सोसाइटी को मैं सहायता नहीं देता। दोषारोपण करने वा निन्दा करने से क्या लाभ? सभी समाजों में दोष हैं। सभी इसे जानते हैं। आज कल के छोटे बच्चे तक इसे जानते हैं। वे सभा मंच पर खड़े होकर हिन्दू समाज के बड़े २ दोषों के सम्बन्ध में हम लोगों को व्याख्यान सुना सकते हैं। जो कोई मूर्ख विदेशी भूप्रदक्षिणा करने के लिये भारत में आता है और रेलगाड़ी द्वारा एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम जाता है, वह भारतवर्ष के सम्बन्ध में पक्की धारणा बना कर भारत की भयानक, अनिष्टकर प्रथाओं के विरुद्ध खूब पांडित्यपूर्ण वक्तृता देने लगता है। हम लोग उनकी बातों को वेद-वाक्य

दोष दिखलाने वाले बहुत हैं, उसे दूर करने वाले कितने हैं?

समझ लेते हैं। दोष तो सभी दिखला सकते हैं, लेकिन मनुष्य जाति के यथार्थ में वे ही मित्र हैं, जो इस समस्या को हल करने का रास्ता दिखलाते हैं। पानी में डूबते हुए बालक और दार्शनिक की कहानी को आप लोगों ने सुना ही होगा। जब बालक पानी में डूबने लगा तो दार्शनिक महाशय गम्भीरता के साथ उसे उपदेश देने लगे, तब बालक ने कहा, 'पहले आप मुझे जल में से निकालिये, तब आप का उपदेश सुनूँगा' इसी तरह से इस समय हमारे देश के लोग चिल्ला कर कहते हैं, हम लोग काफ़ी व्याख्यान सुन चुके, पत्र-पत्रिकायें खूब पढ़ चुके, अब हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जो हमारे हाथ पकड़ कर इस दलदल से निकाल लेवें। ऐसे लोग कहाँ हैं? ऐसे लोग कहाँ हैं जो हमें वास्तव में चाहते हैं? ऐसे लोग कहाँ हैं जो हमसे सहानुभूति रखें? हमें ऐसे ही लोगों की आवश्यकता है। यहीं पर मेरा इन सुधारवादी आन्दोलनकारियों से मेरा मतभेद है। प्रायः सैकड़ों वर्ष से यह सुधार का आन्दोलन चल रहा है। लेकिन इससे अत्यन्त निन्दा और द्वेष पूर्ण साहित्य की सृष्टि को छोड़कर और क्या हुआ है? अगर ऐसा आन्दोलन खड़ा न होता, वही अच्छा था। वे प्राचीन समाज की बड़ी कड़ी आलोचना करते हैं, उसपर खूब दोषारोपण करते हैं, उनकी भरपेट निन्दा करते हैं। मानो प्राचीन समाज ने उनका सब कुछ नष्ट कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि सब देशी भाषाओं में एक ऐसे साहित्य की सृष्टि हुई है जिससे सारी जाति

और देश का सिर नीचा होना उचित है। क्या यही सुधार है? क्या यही सारी जाति को गौरवान्वित करनेवाला मार्ग है? यह किसका दोष है?

इसके बाद और एक गंभीर विषय की विवेचना करनी होगी। यहाँ पर भारत में हम लोग चिरकाल से राजशासन के अधीन रहते आये हैं, राजाओं ने ही हम लोगों के लिये सदा नियम क़ानून बनाये हैं। अब वे राजे नहीं रहे, अब इस विषय में आगे बढ़ने के लिये कोई रास्ता दिखलानेवाला नहीं रहा। गवर्नमेंट साहस नहीं करती। गवर्नमेंट को सर्व-साधारण का मतामत देख कर अपनी कार्य-प्रणाली स्थिर करनी पड़ती है। लेकिन अपनी समस्या को हल करने तथा सर्व साधारण के कल्याण के लिये प्रबल मत बनाने में समय लगता है, काफ़ी समय लगता है। ऐसा मत बनने तक हम लोगों को ठहरना पड़ेगा। इस प्रकार सारी समाज-सुधार की समस्या यों है—'जो सुधार चाहता है, वह कहाँ है, पहले उसे तैयार करो। सुधार चाहने वाले लोग कहाँ हैं? कुछ थोड़े से लोगों को दोष मालूम पड़ता है, परन्तु अधिकांश लोगों ने अब भी नहीं समझा है। इस समय ये अल्प संख्यक लोग ज़बर्दस्ती और सब लोगों के ऊपर अपने इच्छानुसार सुधार लादना चाहते हैं, इससे बढ़ कर और

यहाँ पर नियम बनाने वाले स्वधर्मावलम्बी राजा नहीं रहे, अब लोक शक्ति के गठित करने की आवश्यकता है

कौन सा अत्याचार हो सकता है। कुछ थोड़े से लोगों के दोष मालूम होते ही वह सारी जाति के हृदय को स्पर्श नहीं करता। पहले सारी जाति को शिक्षा दो, व्यवस्था बनाने के लिये एक दल संगठित करो, विधान अपने आप आ जायगा। पहले जिस शक्ति बल से, जिसकी सहायता से विधान गठित हो, उसकी सृष्टि करो। इस समय वे राजा नहीं रह गये। जिस नूतन शक्ति से जिस नये सम्प्रदाय की सम्मति से नई व्यवस्था बनाई जायगी, वह लोक-शक्ति कहाँ है? पहले वह लोक-शक्ति गठित करो। इसलिये समाज सुधार के लिये पहला कर्तव्य लोक-शिक्षा है। यह शिक्षा जब तक पूरी न हो तब तक ठहरना पड़ेगा।

आमूल सुधार

पिछली शताब्दी में सुधारों के लिये जो आन्दोलन होते रहे हैं, वे अधिकतर दिखाऊ हैं। ये सुधार पहले दो वर्ण को स्पर्श करते हैं, अन्य वर्णों को नहीं। विधवा विवाह के आन्दोलन से सैकड़ा पीछे ७० स्त्रियों को कोई सम्बन्ध नहीं। और इस तरह के सभी आन्दोलन सर्व साधारण को वंचित करके (इस पर ध्यान दें) जितने भी उच्च वर्ण के भारतीय शिक्षित हुए हैं, उन्हीं के लिये हैं। वे अपने घर को साफ रखने और विदेशियों की दृष्टि में अपने को सुन्दर दिखलाने में कुछ भी त्रुटि नहीं करते। इसे सुधार नहीं कहा जा सकता। सुधार करते समय केवल ऊपर ऊपर देखने से काम नहीं चलेगा, भीतर प्रवेश करना होगा, जड़ तक समा जाना होगा। इसे ही मैं आमूल सुधार,

असली सुधार कहता हूँ। जड़ में आग लगाओ, जिससे यह आग क्रमशः ऊपर बढ़ते बढ़ते एक पूर्ण भारतीय जाति का संगठन करे।

यह समस्या बहुत आसान नहीं है। यह बड़ी गम्भीर समस्या है। इसलिये घबड़ाने की बात नहीं। और यह भी स्मरण रखें कि गत कई शताब्दियों से इन समस्याओं के सम्बन्ध में हम लोगों के देश के महापुरुषों को काफी ज्ञात था। आजकल खास कर दक्षिण में बौद्ध धर्म और बौद्ध धर्म के अज्ञेयवाद के सम्बन्ध में आलोचना की एक प्रथा चल पड़ी है। वे स्वप्न में भी कभी सोचते नहीं कि हमारे समाज में जो सब दोष हैं, वे बौद्ध धर्म के कारण हैं। बौद्ध धर्म ने आकर हम लोगों को उत्तराधिकार रूप में इस अवनति का भागी बना दिया है। जिन्होंने बौद्ध धर्म की उन्नति और अवनति के इतिहास को कभी पढ़ा नहीं है, उनकी लिखी हुई पुस्तकों में आप पढ़ते हैं कि महात्मा बुद्ध की चलायी अपूर्व नीति और उनके लोकोत्तर चरित्र बल से बौद्ध धर्म इस प्रकार फैल गया था। भगवान बुद्ध पर मैं बड़ी श्रद्धा और भक्ति रखता हूँ। लेकिन मेरी बात ध्यान से सुनिये, बौद्ध धर्म का विस्तार उतना उसके मत या बुद्ध के चरित्र बल से नहीं हुआ जितना उनके मन्दिरों और आडम्बर-पूर्ण क्रिया-कलापों से हुआ था। इसी तरह से बौद्ध धर्म का विस्तार हुआ था। इन बड़े बड़े मन्दिरों और आडम्बर पूर्ण क्रियाओं के सामने अपने अपने घर के सामने होम के लिये छोटी छोटी वेदिकायें टिक न सकीं। अंत

में इन क्रियाओं के अनुष्ठान ने अत्यन्त विभत्स रूप धारण किया। उसने इतना घृणित रूप धारण किया कि श्रोताओं के सामने मैं उन्हें अपनी जुवान से निकाल नहीं सकता। जो लोग इसके सम्बन्ध में जानने के इच्छुक हों, वे तरह तरह के चित्रकारी पूर्ण दक्षिणात्य के वड़े वड़े मन्दिरों को देख आवें।

हम लोगों ने वौद्धों से यही विरासत के रूप में पाया है। इससे वाद महान सुधारक श्री शंकराचार्य तथा उनके वाद के महात्माओं का अभ्युदय हुआ और सैकड़ों वर्ष से, उनके अभ्युदय से आज तक भारत के सर्व साधारण को धीरे धीरे उस मौलिक विशुद्ध वेदान्त धर्म में ले आने की चेष्टा हो रही है। इन सुधारकों को समाज में जो जो दोष थे, वे अच्छी तरह ज्ञात थे, तौ भी उन्होंने समाज की निन्दा नहीं की। उन्होंने यह वात नहीं कही कि तुम में जो कुछ है, वुराई ही वुराई है, उन्हें तुम को त्याग देना पड़ेगा। यह कभी हो भी नहीं सकता था। मैंने अभी पढ़ा है मेरे मित्र वैसेज साहव लिखते हैं, ३०० वर्ष में ईसाई मजहव ने ग्रीक धर्म के रोमन प्रभाव को एक दम पलट दिया था। जिन्होंने योरप, ग्रीस और रोम को देखा है, वह कभी ऐसी वात नहीं कह सकते। रोमन और ग्रीक प्रभाव कैथोलिक को कौन कहे, प्रोटेस्टेण्ट देशों पर भी है। केवल वदल भर गया है, पुराने देवता नये वेश में

शंकर आदि प्राचीन आचार्यों के सुधार का प्रयत्न लोगों को धीरे धीरे वेदान्त धर्म का धर्मानुयायी वनाना था

विद्यमान हैं, देवी हुई हैं मेरी, देवता लोग हुए साधु (Saints) और नये नये अनुष्ठान प्रचलित हुए हैं। यहाँ तक कि प्राचीन उपाधि पंटीफेक्स मैक्सिमस* तक है। अस्तु। एक दम परिवर्तन नहीं हो सकता। इस तरह का परिवर्तन बिल्कुल आसान नहीं है। इसे शंकराचार्य और रामानुज सभी

एक दम परिवर्तन असम्भव है

जानते थे। इस तरह परिवर्तन नहीं हो सकता। इसलिये उस समय के प्रचलित धर्म को धीरे धीरे ऊँचे आदर्श की ओर ले जाने के अतिरिक्त उनके लिये और कोई रास्ता न था। अगर वे दूसरा तरीका काम में लाने की कोशिश करते अर्थात् यदि वे सब कुछ उलट पुलट करने की चेष्टा करते तो उन्हें कपट छल करना पड़ता। क्यों कि उनके धर्म का प्रधान मत क्रमोन्नति वाद है, इन सभी भिन्न भिन्न सोपानों से होकर आत्मा अपने ऊँचे लक्ष्य तक पहुँचेगा। यही उनका मूल मत है। इसलिये ये सभी सोपान आवश्यक और हम लोगों के लिये सहायक हैं। इन सोपानों की निन्दा करने का साहस ही कौन कर सकता है?

आजकल यह एक साधारण बात हो गई है और सभी लोग अनायास ही इस बात को स्वीकार करते हैं कि मूर्ति-पूजा ठीक

---

*रोमनों के पुरोहित-विद्यालय के प्रधानाध्यक्ष इस नाम से पुकारे जाते थे। इस वाक्य का अर्थ प्रधान पुरोहित है। इस समय पोप इसी नाम से पुकारे जाते हैं।

नहीं। मैं भी कभी ऐसा ही कहता और सोचता था और इसके दण्ड स्वरूप मुझे एक ऐसे पुरुष के पैरों तले बैठ कर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी जिन्होंने मूर्ति-पूजा से ही सब कुछ पाया था। मैं स्वामी रामकृष्ण परमहंस की बात कह रहा हूँ। हिन्दुओ, अगर मूर्ति पूजा करके इस तरह के रामकृष्ण परमहंस जैसे आदमियों की उत्पत्ति हो तो तुम लोग और क्या चाहते हो, सुधारकों का धर्म चाहते हो या मूर्ति-पूजा? मैं इसका कोई उत्तर चाहता हूँ। अगर मूर्ति-पूजा द्वारा इस तरह रामकृष्ण परमहंस जैसे आदमी बन सकते हैं तो हजारों मूर्तियों की पूजा करो। सिद्धिदाता आपको सिद्धि देवे। चाहे जिस तरह से हो, ऐसे महात्माओं की सृष्टि करो। और मूर्ति-पूजा को लोग गाली देते हैं। क्यों? इसे कोई नहीं जानता। बात यह है कि कई हजार वर्ष पहले एक यहूदी के वंश में उत्पन्न व्यक्ति ने मूर्ति-पूजा की निन्दा की थी। अर्थात् उन्होंने अपनी मूर्तियों को छोड़कर और सब की मूर्तियों की निन्दा की थी। उस यहूदी ने कहा था, कि यदि किसी विशेष भाव को प्रकट करने वाली या परम सुन्दर मूर्ति के द्वारा ईश्वर के भाव को प्रकट किया जाय तो यह बड़ा ही दोष पूर्ण है, इसमें बड़ा पाप है। लेकिन एक सन्दूक के दोनों ओर दो देवदूत और ऊपर मेघ हों, इस तरह से ईश्वर का भाव प्रकट किया जाय तो यह बड़ा पवित्र है। अगर ईश्वर उल्लू का रूप धारण करके आवें तो यह बड़ा पवित्र है, लेकिन अगर वह गाय का रूप

मूर्ति-पूजा

धारण करके आवें तो यह बहुत बुरा है अधःपतन की ओर ले जाने वाला है।

दुनिया का भाव ही ऐसा है। इसी से कवि कहते हैं कि हम, मृत्युलोक वासी क्या मूर्ख हैं! इसलिये एक दूसरे को एक दूसरे की आँखों से देखना और विचार करना बहुत कठिन बात है।

हम लोग एक दूसरे का दोष दिखा कर उन्हें शिक्षा देते हैं, लेकिन अपना दोष नहीं देखते।

और यही मनुष्य समाज की उन्नति में एक बहुत बड़ी बाधा है। यही ईर्ष्या और घृणा, विवाद और द्वन्द का मूल है। बालको, अपरिपक्व बुद्धि वाले बच्चो, तुम मद्रास के बाहर कहीं नहीं जाते हो। तुम लोग तीस करोड़ आदमियों के ऊपर क़ानून चलाना चाहते हो, क्या तुम को शर्म नहीं आती? इस तरह के दोषों को दूर करो और पहले अपने को शिक्षित करो। श्रद्धा-रहित बालको, तुम लोग काग़ज़ पर कुछ लाइनें खींच देते हो, और किसी गंवार को पकड़ कर उसे छपा देते हो। इसी से अपने को संसार का शिक्षक, अपने को भारत का मुख्यपात्र समझते हो? क्या यही बात है न?

इसी कारण से मैं मद्रास के सुधारकों को यही कहना चाहता हूँ कि मेरी उन पर बड़ी श्रद्धा और प्रीति है। मैं उनके विशाल हृदय, उनके स्वदेश-प्रेम, दरिद्र और अत्याचार-पीड़ित लोगों के प्रति उनके प्रेम के लिये मैं उनसे प्रेम करता हूँ। लेकिन भाई जिस तरह अपने भाई को प्रेम करता है और उसका दोष भी दिख-

सुधारकों को नयी प्रणाली का अवलम्बन करना होगा

लाता है, उसी तरह मैं भी उनसे कहता हूँ कि उनकी कार्य-प्रणाली ठीक नहीं। सैकड़ों वर्षों से इसी प्रणाली से कार्य करने की कोशिश हो रही है, लेकिन इससे कुछ फल नहीं निकला। इस समय हम लोगों को किसी नये उपाय से काम करने की कोशिश करनी होगी। मुझे यही कहना है।

भारतवर्ष में क्या कभी सुधारकों का अभाव रहा है। आप ने भारत का इतिहास तो पढ़ा ही होगा ? रामानुज, शंकर, नानक चैतन्य, कबीर, दादू आदि जो बड़े बड़े धर्माचार्य भारत रूपी आकाश में तारे की तरह उदित होकर अस्त हो चुके हैं, ये क्या थे ? रामानुज का हृदय क्या नीच जातियों के लिये रोता नहीं था ? क्या उन्होंने जीवन भर नीच से नीच जातियों, यहाँ तक कि पारिया जाति तक को अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित करने के लिये प्रयत्न नहीं किया ? क्या उन्होंने मुसलमानों तक को

पुराने और आज कल के सुधारकों में भेद

ग्रहण करने की कोशिश नहीं की ? नानक ने हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों को मिला कर एक नया समाज संगठित करने की कोशिश नहीं की ? इन सब ने प्रयत्न किये थे और उनके कार्य अब भी हो रहे हैं। तौ भी अन्तर यह है कि वे आधुनिक सुधारकों की तरह गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाते नहीं थे और न ढोंग ही करते थे।

आधुनिक सुधारकों की तरह उनके मुख से कभी शाप भरे शब्द नहीं निकलते थे, उनके मुँह से केवल आशीर्वाद निकलता था। वे कभी समाज पर दोषारोपण नहीं करते थे। वह लोगों से कहते थे कि हिन्दू जाति को क्रमशः उन्नति करनी होगी। वे भूत-काल की ओर दृष्टि डाल कर कहते थे कि हिन्दुओ, तुम ने आज तक जो कुछ किया है, वह अच्छा ही हुआ है। लेकिन हे भाइयो, हम लोगों को और भी अच्छा कार्य करना होगा। उन्होंने कभी ऐसा नहीं कहा कि तुम लोग इतने दिन तक बुरे थे, अब तुम लोगों को अच्छा बनना होगा। वे कहते थे कि तुम लोग अच्छे थे, लेकिन अब और भी अच्छा बनना पड़ेगा। इन दोनों तरह की बातों में विशेष अन्तर है। हम लोगों को अपने

जातीय भाव से समाज सुधार

स्वभाव के अनुसार उन्नति के लिये प्रयत्न करना होगा। विदेशी समाज हम लोगों पर ज़बर्दस्ती जो प्रणाली चलाना चाहता है, उसके अनुसार कार्य करने की कोशिश करना व्यर्थ है। वह असम्भव है। हम लोगों को दूसरी जातियों की तरह तोड़ फोड़ कर गढ़ा नहीं जा सकता, इसके लिये ईश्वर को धन्यवाद है। मैं दूसरी जातियों की सामाजिक प्रथाओं की निन्दा नहीं करता। वे प्रथायें उन जातियों के लिये भले ही अच्छी हों, परन्तु हमारे लिये अच्छी नहीं हैं। उनके लिये जो अमृत है, वही हमारे लिये विष के समान हो सकता है। पहले इसी को सीखना होगा। दूसरे तरह के विज्ञान, व दूसरे प्रकार के

परम्परागत संस्कार और आचार में गठित होने से उनकी आधुनिक सामाजिक प्रथायें भी एक तरह से आ गई हैं। इधर हम लोगों के पीछे दूसरे ही तरह की परम्परागत संस्कार और हजारों वर्ष के कर्म हैं। इसलिये हम लोग स्वभावतः अपने संस्कार के अनुसार चल सकते हैं। और लोगों को उसी प्रकार करना होगा।

मेरी कार्य प्रणाली देश काल के अनुसार थोड़ा सा परिवर्तन करके प्राचीन आचार्यों के कार्य प्रणाली का अनुसरणमात्र है

तो मैं किस प्रणाली से कार्य करूँ? मैं प्राचीन काल के बड़े बड़े आचार्यों के उपदेशों का अनुसरण करना चाहता हूं। मैंने उन के कार्यों की विशेष रूप से आलोचना की है और उन्होंने किस ढंग से कार्य किये हैं, ईश्वर की इच्छा से उसे आविष्कार किया है। उन महात्माओं ने समाज का संगठन किया था। उन्होंने उस में विशेष रूप से शक्ति, पवित्रता और जीवनी-शक्ति संचारित की थी। उन्होंने अत्यन्त अद्भुत कार्य किये थे। हम लोगों को भी अत्यन्त अद्भुत अद्भुत कार्य करने होगें। इस समय विशेष अवस्था के कारण कुछ परिवर्तन हो गये हैं। इस से कार्य-प्रणाली में केवल थोड़ा सा परिवर्तन करना होगा, और कुछ करना न होगा।

मैं देखता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति का जैसे कोई उद्देश्य होता है, वैसे ही प्रत्येक जाति का भी एक विशेष जीवनोद्देश्य होता है। यही उनके जीवन का केन्द्रस्वरूप है। यही मानो उनके जीवन

धर्म ही भारत के जातीय जीवन का मेरु दण्ड है

संगीत का प्रधान सुर है, अन्यान्य सुर मानो उस प्रधान सुर के साथ मिल कर ऐक्यतान उत्पादन करते हैं। किसी देश की—जैसे इंग्लैंड को ही लीजिये—जीवनी शक्ति राजनैतिक अधिकार है। कला-विद्या की उन्नति ही, संभव है, किसी दूसरी जाति के जीवन का मूल लक्ष्य हो। लेकिन भारत में धर्म-जीवन ही जातीय जीवन का केन्द्र स्वरूप है, वही 'मानो जातीय जीवन रूपी संगीत का प्रधान सुर है। और यदि कोई जाति अपनी उस स्वाभाविक जीवन-शक्ति को, जो सैकड़ों वर्षों तक विशेष दशा की ओर गति-शील रही है, त्यागने की चेष्टा करती है, और इस प्रयत्न में सफल होती है तो उसकी मृत्यु हो जाती है। इसलिये अगर तुम धर्म को केन्द्र न मानकर, धर्म को ही जातीय जीवन की जीवन शक्ति न समझकर राजनीति, समाजनीति वा दूसरी किसी नीति को उसका स्थान दो तो उसका नतीजा यह होगा कि तुम एक बारगी नष्ट हो जाओगे। जिस प्रथा से यह न होने पावे, उसके लिये तुम को अपनी जीवनी शक्ति स्वरूप धर्म को प्रधानता देकर सब काम करने होंगे। आपकी स्नायुतन्त्रियाँ आप के धर्म रूपी मेरु दण्ड से दृढ़ सम्बद्ध होकर अपना सुर बजायें।

मैंने अच्छी तरह से देखा है कि सामाजिक जीवन को लेकर किस तरह कार्य करूँगा, इसे देखे बिना मैं अमेरिका में धर्म प्रचार न कर सकता था। वेदान्त के द्वारा किस प्रकार अद्भुत

विभिन्न जातियों के मूल उद्देश्य के अनुसार कार्य प्रणाली का तारतम्य

राजनैतिक परिवर्तन होगा, इसे दिखाये बिना मैं इंग्लैंड में धर्म-प्रचार न कर सकता था। इस प्रकार भारत में समाज-सुधार का प्रचार करने के लिये दिखलाना होगा कि उस नवीन सामाजिक प्रथा के द्वारा आध्यात्मिक जीवन को प्राप्त करने में क्या विशेष सहायक होगा। राजनीति का प्रचार करने पर भी यह दिखलाना होगा कि हमारे जातीय जीवन की प्रधान आध्यात्मिक उन्नति उसके द्वारा कहाँ तक अधिक सिद्ध होगी।

धर्म को अपने जातीय जीवन का मेरु दण्ड बनाना क्या बुरा हुआ है?

प्रत्येक मनुष्य इस संसार में अपना अपना रास्ता ढूँढ लेता है। प्रत्येक जाति के लिये भी वही बात है। हम लोगों ने सैकड़ों युगों से ही अपना रास्ता ढूँढ़ लिया है, इस समय हम लोगों को उसी के अनुसार चलना होगा। हम लोगों के इस चुनाव को कोई बुरा नहीं कहा जा सकता। जड़ के बदले चैतन्य, मनुष्य के बदले ईश्वर का चिन्तन करना क्या बुरा कहा जा सकता है? आप लोगों का उस परलोक में दृढ़ विश्वास है, इस लोक के प्रति अत्यन्त उदासीनता, त्याग तथा ईश्वर और अविनाशी आत्मा में दृढ़ विश्वास विद्यमान है। क्या कभी इसे त्याग करके देखा है। आप कभी इसे त्याग नहीं कर सकते। आप लोग जड़वादी बनकर कुछ दिन तक जड़वाद की बातें कहकर मुझे धोखा देने की भले

ही कोशिश करें, मगर मैं आप लोगों के स्वभाव को जानता हूं। इसी से धर्म के सम्बन्ध में अच्छी तरह से समझा दूंगा, इससे आप परम आस्तिक होंगे, भला स्वभाव कैसे बदल सकता है? आप लोग धर्म के प्राण-स्वरूप हैं।

इस कारण से भारत में जिस किसी तरह के सुधार वा उन्नति की चेष्टा की जाय, पहले धर्म-प्रचार आवश्यक होगा।

पहला काम भारत में धर्म-प्रचार है।

भारत को सामाजिक वा राजनैतिक भावों से भरने के पहले इस देश को आध्यात्मिक भावों से भरना होगा। पहले यह करना आवश्यक है। सबसे पहले हम लोगों को इस कार्य में मन लगाना होगा कि हम लोगों के उपनिषदों में, पुराणों में तथा हमारे अन्यान्य शास्त्रों में जो अपूर्व सत्य छिपे हुए हैं, उन्हें इन ग्रन्थों से निकाल कर मठों से, वनों से, सम्प्रदाय विशेष के अधिकार से बाहर करके सम्पूर्ण भारत में फैला देना होगा, जिस से शास्त्र में छिपी हुई महा वाक्य की ध्वनि उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक—हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक और सिन्धु नदी से लेकर ब्रह्मपुत्र नद तक—गूँज उठे। सब लोगों को शास्त्रों में छिपी हुई उपदेशावलि को सुनानी होगी। क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि पहले श्रवण करो, पीछे मनन करो, इसके बाद निदिध्यासन करो। पहले लोगों में शास्त्रों के वाक्यों को सुनिये और जो कोई भी आदमी लोगों को शास्त्र के वाक्यों को सुनाने में मदद करता है, वह आज ऐसा एक कार्य करता है

जिसके समान और कोई कर्म नहीं हो सकता। मनु ने कहा है, "इस कलियुग में मनुष्यों के करने के लिये एक कर्म है। आज कल यज्ञ तथा कठोर तपस्या से कोई फल नहीं हो सकता। इस समय दान ही एक मात्र कर्म है।* दानों में धर्म दान, आध्यात्मिक ज्ञान ही सर्व श्रेष्ठ दान है। दूसरा विद्या दान है,

तीसरा प्राण दान है, चौथा अन्न दान

दान मेकं कलौयुगे है। इस अपूर्व दानशील हिन्दू जाति की

ओर दृष्टि डालिये। इस दरिद्र, अत्यन्त

निर्धन देश में लोग कितना दान करते हैं, इस ओर ध्यान दीजिये। यहाँ पर लोग इतना अथिति सत्कार करते हैं कि कोई आदमी बिना किसी अवलम्ब के इस देश के इस छोर से उस छोर तक घूम आ सकता है। लोग अपने सगे सम्बंधियों को जिस तरह यत्न के साथ अनेक उपचारों के द्वारा सेवा करते हैं, वैसे ही वह जहाँ भी जाँयगे, लोग उनकी उसी तरह से सेवा करेंगे। यहाँ पर कहीं जब तक रोटी का एक टुकड़ा भी रहेगा, तब तक कोई किसी भिखमंगे को बिना खाये मरने न देगा।

इस दानशील देश में हम लोगों को पहले दो प्रकार के दानों में साहस पूर्वक आगे बढ़ना होगा। पहला तो ज्ञान का विस्तार है। इस ज्ञान दान को केवल भारत तक ही परिमित न रखना होगा,

---

*तपः परं कृते युगे त्रेतायां ज्ञान मुच्यते।
द्वापरे यज्ञ मेवाहु र्दानमेकं कलौ युगे। मनुस्मृति १ अ० ८६ श्लो०

सारे संसार में उसको देना होगा। यह सदा से होता आया है। जो लोग आप से कहते हैं कि भारत के अतिरिक्त और देशों में धर्म-प्रचार के लिये पहले पहल मैं ही

भारत के अतिरिक्त देशों में धर्म-प्रचार

सन्यासी रूप में गया हूँ वे अपने देश के इतिहास के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। ऐसा कई बार हुआ है। जभी संसार को आवश्यकता हुई है, तभी आध्यात्मिकता के झरने से नदियाँ निकल कर सारे संसार को लावित किया है। असंख्य सैनिकों को लेकर उच्च स्वर से भेरी बजाते हुए राजनैतिक ज्ञान का विस्तार किया जा सकता है, लौकिक वा सामाजिक ज्ञान को फैलाने के लिये भी तलवार वा तोप की सहायता हो सकती है। लेकिन ओस बूँदे की अदृश्य रूप से पड़ने पर हज़ारों गुलाब की कलियों को खिला देती है। वैसे ही आध्यात्मिक ज्ञान चुपचाप अज्ञात रूप से फैलता रहता है। भारत ने कई बार संसार को यह आध्यात्मिक ज्ञान रूपी उपहार दिया है। जभी किसी दिग्विजयी जाति ने उठकर संसार की भिन्न भिन्न जातियों को एक सूत्र में बाँधा है, जभी उनने रास्ता घाट ठीक करके विभिन्न स्थानों में आने जाने की सुगमता कर दी है, तभी भारत ने उठ कर संसार की उन्नति के लिये जो कुछ देना है, दिया है, अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान दिया है। बुद्धदेव के पैदा होने के बहुत पहले से ही ऐसा होता आया है। चीन, एशिया माइनर और मलयद्वीप समूहों में इसके चिन्ह मौजूद हैं। जभी उस प्रबल दिग्विजयी ग्रीक जाति

ने उस समय के परिचित जगत के सम्पूर्ण अंश को एकत्र बाँधा था, उस समय भी ऐसा हुआ था; उस समय भी भारतीय धर्म उन सभी स्थानों में फैला था और पाश्चात्य प्रदेश जिस सभ्यता के कारण घमंड करता है, वह उस महानदी का चिन्ह मात्र है। इस समय फिर वही समय उपस्थित है। इंग्लैंड की शक्ति से सारे संसार की जातियाँ एक सूत्र में बँधी हुई हैं। अंग्रेजों का रास्ता और दूसरे आने जाने के साधन एक देश से दूसरे देश तक फैले हुए हैं। आज अंग्रेजों की प्रतिभा से संसार अपूर्व भाव से एक सूत्र में बँध गया है। आजकल जिस प्रकार विभिन्न स्थानों में व्यापार के केन्द्र स्थापित हो गये हैं, मानव जाति के इतिहास में कभी नहीं हुए थे। इसलिये इस सुयोग को पाकर भारत ने चाहे प्रत्यक्ष रूप में अथवा अप्रत्यक्ष रूप में उठ कर संसार को अपनी आध्यात्मिकता का उपहार दिया है। अब इन मार्गों का अवलम्बन कर के यह भारतीय विचार-धारा सारे संसार में फैल जायगी। मैं जो अमेरिका गया था, यह आपकी अथवा मेरी इच्छा से नहीं। बल्कि भारत के ईश्वर ने—जो इसके भाग्य विधाता हैं, मुझे भेजा था। और वे ही इस तरह के सैकड़ों आदमियों को संसार की सभी जातियों के पास भेजेंगे। कोई पार्थिव शक्ति उसे रोकने में समर्थ नहीं हो सकती। इसलिये आप लोगों को भारत के अतिरिक्त और देशों में धर्म-प्रचार का कार्य करने के लिये जाना होगा। धर्म-प्रचार के लिये आपको भारत के बाहर जाना होगा, और संसार की सभी जातियों

और लोगों में इसका प्रचार करना होगा। पहले यह धर्म-प्रचार आवश्यक है।

धर्म-प्रचार के साथ साथ लौकिक विद्या तथा अन्यान्य विद्यायें जो कुछ आवश्यक होंगी, आपसे आप आ जाँयगीं।

साथ साथ विद्या-दान भी करना होगा।

लेकिन अगर धर्म को छोड़ कर लौकिक ज्ञान को फैलाने की कौशिश करोगे तो मैं आपसे स्पष्ट कहता हूँ कि भारत में आप की यह कोशिश बिल्कुल बेकार होगी। लोगों के दिल में वह घर न करेगी। यही क्यों, इतना बड़ा जो बौद्ध धर्म था, वह भी बहुत अंशों में इसी कारण से अपना प्रभाव न फैला सका। अगर इस फल को पाने में असफल हो तो हम आप क्या कर सकते हैं?

आचार्य शिक्षालय

हे भाइयो, इस कारण से मेरा संकल्प यह है कि भारत में, मैं कई विद्यालय खोलूँगा। उसमें हमारे युवक भारत में तथा बाहर के देशों में हमारे शास्त्र में छिपे हुए सत्यों के प्रचार करने की शिक्षा पायँगे। मनुष्य चाहिए मनुष्य, और सब कार्य हो जायेंगे। बलवान, बिल्कुल निश्छल, तेजस्वी तथा विश्वास-पात्र युवकों की आवश्यकता है। अगर इस तरह के एक सौ युवक मिल जाँय तो सारे संसार में भाव को फैला दिया जा सकता है। और सब बातों की अपेक्षा इच्छा-शक्ति का प्रभाव अधिक पड़ता है। इच्छा-शक्ति के सामने और सभी शक्तियाँ

कमज़ोर हो जाँयगी। क्योंकि इच्छा-शक्ति स्वयं ईश्वर के यहां से आती है। शुद्ध और दृढ़ इच्छा शक्ति सर्वशक्तिमान है। क्या आप इस पर विश्वास नहीं करते ? सब लोगों में अपने धर्म के महान् सत्यों का प्रचार कीजिये, फैलाइये। सारा संसार इन के लिए इन्तज़ारी कर रहा है।

सैकड़ों शताब्दियों से लोगों को मतमतान्तर यह शिक्षा देते आरहे हैं कि मनुष्य अधम हैं। उन्हें यह बतलाया गया है कि वे कुछ नहीं हैं। सब जाति के लोगों को चिरकाल से यह कहा गया है कि तुम मनुष्य नहीं हो। सैकड़ों शताब्दियों से उन्हें इस प्रकार भय दिलाया गया है जिससे वे धीरे धीरे सचमुच ही पशुवत हो गये हैं। उन्हें कभी आत्मतत्व नहीं बतलाया गया है।

आत्म-तत्व के सुनने से हीन व्यक्तियों में शक्ति का विकास होगा

वे अब आत्मतत्व सुनें, वे जान लें कि उनमें से छोटे से छोटे व्यक्ति के भीतर भी आत्मा है, उसे न तो आग जला सकती है, न हवा सुखा सकती है, वह अविनाशी है, अनादि है, अनन्त है, शुद्ध रूप है, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है।

वे अपने में विश्वास रखें। अँग्रेज़ जाति और आप में क्यों इतना अन्तर है ? वे अपने धर्म की श्रेष्ठता, प्रबल कर्तव्य-ज्ञान की बात क्यों न कहें, मैंने जान लिया है कि किसी बात में दोनों जातियों में भेद है। वह अन्तर यह है कि अँग्रेज़ अपने ऊपर

अंग्रेज़ों और हम लोगों में क्या अंतर है? अंग्रेज़ विश्वासी हैं हम लोग अविश्वासी हैं

विश्वास रखते हैं, आप नहीं। उनका विश्वास है कि वे जब अंग्रेज हैं तो जो चाहें कर सकते हैं। इसी विश्वास-बल से उनके अन्दर छिपा हुआ ब्रह्म जग उठता है तब वह जो चाहते हैं, कर सकते हैं। आप से लोग कहते आते हैं और शिक्षा देते आते हैं कि तुम में कुछ भी करने की शक्ति नहीं है, इसी से आप अकर्मण्य हो गये हैं। इसलिए अपने में विश्वास रखिए।

इस समय हम लोगों के लिये आवश्यक है, शक्ति संचार करना। हम लोग दुर्बल हो गये हैं। इसी से हम लोगों में गुप्त विद्या, रहस्य विद्या, टोना जादू मन्तर सब आ गया है। संभव है, इनमें महान् सत्य हो, लेकिन इन्होंने हम लोगों को प्रायः नष्ट कर दिया है। अपने स्नायुओं को तेजस्वी बनाओ।

दुर्ब्बलता और गुप्त विद्या Occultism

हम लोगों को लोहे और वज्र के समान मज़बूत पेशी और स्नायु वाला बनने की आवश्यकता है। हम लोग बहुत दिनों से रोते आ रहे हैं। अब अधिक रोने की आवश्यकता नहीं। अब अपने पैरों के बल खड़े होकर मनुष्य बनो। हम लोगों को इस समय ऐसे धर्म की आवश्यकता है जो हम लोगों को मनुष्य बना सके। हम लोगों को ऐसे मतवाद की आवश्यकता है, जिससे हम लोग मनुष्य बन सकें। जिससे

हृदयवान, कर्मशील हे भावी स्वदेश-हितैषियो, आप लोग तथा दृढ़ होने की हृदयवान होइये, प्रेमी बनिये। क्या

आपने निश्चय रूप से समझ लिया है कि करोड़ों ऋषियों तथा देवताओं के वंशधर बिलकुल पशु हो गये हैं ? क्या आप यह अच्छी तरह अनुभव करते हैं कि करोड़ों लोग बिना खाये पिये मर रहे हैं और करोड़ों लोग सैकड़ों शताब्दियों से आधा पेट खाये जीवन बिता रहे हैं ? क्या आप यह समझे हुये हैं कि अज्ञान रूपी काली घटा सारे भारत को घेरे हुए है ? क्या आप यह सोच विचार कर अस्थिर हो गए हैं ? क्या इस चिन्ता के मारे आप को नींद नहीं आती ? क्या यह भावना आपके खून के साथ मिलकर आपके नस नस में बह रही है ? क्या इस भावना ने आपको पागल बना दिया है ? देश की दुर्दशा की चिन्ता क्या आपके ध्यान का एक मात्र विषय हो रहा है और इस चिन्ता में डूब कर क्या आप अपने नाम यश, स्त्री-पुत्र, विषय-सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर तक को भूल गये हैं ? क्या सचमुच आपकी ऐसी दशा हो रही हैं ? अगर ऐसी दशा हो गई है तो यह समझिये कि आपने स्वदेश-हितैषी होने के प्रथम सोपान पर पैर रखा है। आप में से बहुत से जानते होंगे कि मैं अमेरिका में इसलिये नहीं गया था कि वहाँ सर्व धर्मसम्मेलन होने वाला था, बल्कि देश के जन साधारण की दुर्दशा के प्रतिकार के लिये भूत मेरी गर्दन को दबा रहा था। मैं इधर कई

वर्षों से सारे भारत में घूमा हूँ, लेकिन अपने देशवासियों की सेवा करने का कोई भी मौका नहीं पाया। इसीलिये मैं अमेरिका गया था। उस समय आप लोगों में से जो लोग मुझे जानते थे, वे अवश्य ही इस बात को जानते हैं। धर्म सभा में क्या हुआ, क्या न हुआ, इस बात को लेकर आप दिमाग़ को न खपाइये। यहाँ पर मेरे मांस रक्त रूपी जन साधारण दिन दिन नष्ट हो रहे हैं, क्या इसकी खबर आपको नहीं है? यही स्वदेश-हितैषी होने की पहली सीढ़ी है।

माना कि देश की दुर्दशा को आप खूब समझते हैं, किन्तु मैं पूछता हूँ कि इस दुर्दशा को दूर करने के लिये कोई उपाय स्थिर किया है? कोरी बातों में शक्ति का नाश न करके कोई काम लायक़ रास्ता ढूंढ निकाला है? क्या आप लोगों को गाली न देकर उनकी उचित सहायता कर रहे हैं? स्वदेश-वासियों की इस मुर्दे के समान दशा को दूर करने के लिये उन के दुःख दर्द में कुछ सान्त्वना भरे वाक्य क्या आप उन्हें सुनाते हैं? लेकिन आप से तो यह भी नहीं होता। क्या आप पहाड़ के समान बाधाओं को तुच्छ समझ कर काम करने के लिये तैयार हैं? अगर सारा संसार हाथ में तलवार लेकर आपके मुक़ाबिले को खड़ा हो तो भी आपने जिसे सच्चा मान लिया है, वही कर सकते हैं? अगर आपके स्त्री पुत्र आपके विरुद्ध खड़े हों, अगर आप का धन आदि सब कुछ चला गया तो भी क्या आप उस पर डटे रह सकते हैं? राजा भर्तृहरि ने जैसा कहा है, नीतिनिपुण

लोग चाहे निन्दा करें, वा प्रशंसा करें, लक्ष्मी आयें या जायें, मृत्यु आज ही हो या युगान्तर में हो, वही धीर हैं, जो सत्य से ज़रा भी विचलित नहीं होते। * इसी प्रकार अपने मार्ग से विचलित न होकर क्या आप दृढ़ता के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकते हैं ? क्या आप में ऐसी दृढ़ता है ? अगर आप में ये तीन चीजें हैं तो आप में से प्रत्येक अलौकिक कार्य कर सकता है। आपको पत्रों में लिखने या वक्तृता देने के लिये घूमने की आवश्यकता न होगी। आप का मुख एक स्वर्गीय ज्योति धारण करेगा। आप अगर पहाड़ की गुफ़ा में जाकर वास करेंगे तो भी आप की विचार-धारा पर्वत की प्राचीर को भेदकर बाहर निकल पड़ेगी। संभव है कि सैकड़ों वर्षों से कोई आश्रय न पाकर सूक्ष्म रूप में संसार में भ्रमण करें। लेकिन एक न एक दिन वह किसी मस्तिष्क का आश्रय लेगी ही। तब उस विचार-धारा के अनुसार कार्य होगा। निश्छलता, पवित्र विचार और शुद्ध भावना में असीम बल होता है।

और एक बात है। मुझे आशंका हो रही है कि आप लोगों को विलम्ब हो रहा है। मेरे देश भाइयो, मेरे बन्धुओ,

---

*निन्दंति नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्ठम्
अद्यैव वा मरण मस्तु युगान्तरे वा
न्यायात् पथात् प्रविचलन्ति पदं न धीरा :
नीति शतक ७४

हमारे बच्चो, यह जातीय नौका लाखों आदमियों को जीवन रूपी नदी के पार कर रही है। इसकी सहायता से अनेको शताब्दियों से लाखों आदमी जीवन रूपी नदी के उस पार अमर लोक में पहुँचे हैं। आज संभव है, आपके ही दोष से उस में दो एक छेद हो गये हैं, वह कुछ खराब हो गई है। आप इस समय क्या उसकी निन्दा करोगे? संसार की सभी वस्तुओं से जो वस्तु हमारे काम में अधिक आई है, उस पर क्या आप को शाप की वर्षा करना उचित है? अगर इस जातीय पोत में छेद हो गया है—हमारे समाज में खराबी पैदा हो गई है—तो आखिर हम सन्तान तो इसी समाज की हैं। हम लोगों को तो इसे बन्द करना होगा। अगर हम लोग ऐसा न कर सकते तो आनन्द के साथ हमारे हृदय का रक्त देकर भी उसके लिये प्रयत्न करना होगा, नहीं तो हमें मरना पड़ेगा। हम लोग अपने मस्तिष्क रूपी काठ के टुकड़े से इस नाव के छेदों को बन्द करेंगे, किन्तु कभी इसकी निन्दा न करेंगे। इस समाज के विरुद्ध कोई कठोर बात न कहिये। मैं इसके अतीत महत्व के कारण इसे प्यार करता हूँ। मैं आप सब लोगों को प्यार करता हूं। क्योंकि आप देवताओं के वंशधर हैं, आप महा महिमाशाली पूर्वजों की सन्तान है। आप का सब तरह से कल्याण हो। भला आप की किस तरह निन्दा करूँ या गाली दूँ। यह कभी नहीं हो सकता। हमारी सन्तानो! मैं आप लोगों से अपना सब उद्देश्य कहने के लिये आया हूं! अगर आप सुनें तो मैं आप लोगों के साथ कार्य करने

को तैयार हूं, अगर न सुनेंगे, यही नहीं, बल्कि अपने पैरों से मारकर मुझे भारत भूमि से भगा भी देवें तो भी आपके पास वापस आकर कहूंगा कि हम सब लोग डूब रहे हैं। इसी कारण से मैं आप लोगों के भीतर आप लोगों का एक होकर आप लोगों में मिलने के लिये आया हूं। और यदि हम लोगों को डूबनाही है तो हम सब लोग मानो एक साथ ही डूबें लेकिन किसी के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग न करें।

विश्व को भारत का सन्देश

पुण्य-भूमि भारत

मेरे द्वारा जो कुछ मामूली काम हुआ है, वह मेरी किसी गुप्त शक्ति के बल से नहीं हुआ है। पाश्चात्य देशों में भ्रमण करते समय मेरी प्यारी भूमि भारत से जो उत्साह भरे वाक्य, जो शुभेच्छा, जो आशीर्वाद पाया है, यह सब कुछ उसी के बल से हुआ है। यद्यपि थोड़ा बहुत कार्य हुआ है, लेकिन इस भ्रमण से विशेष लाभ मुझे हुआ है। इसका कारण यह है कि पहले हृदय के आवेग से जो कुछ विश्वास करता था, अब वह मेरे लिये सत्य और प्रामाणिक सिद्ध हुआ है। पहले सब हिन्दुओं की तरह मैं भी विश्वास करता था कि भारतवर्ष पुण्य भूमि, कर्म भूमि है। माननीय सभापति ने भी यही कहा है। मैं आज इस सभा के सामने खड़ा होकर दृढ़ता के साथ कहता हूँ, यह सच है, बिल्कुल ठीक है। अगर इस पृथ्वी में ऐसा कोई देश है जिसे पुण्य-भूमि कहा जा सके—यदि ऐसा कोई स्थान है जहाँ पर पृथ्वी के सभी जीवों को कर्म-फल भोगने के लिये आना होगा, अगर ऐसा कोई स्थान है जहाँ ईश्वर को पाने की इच्छा रखने वाले जीवों को आना होगा, यदि ऐसा कोई देश है, जहाँ पर

सब से अधिक आध्यात्मिकता और अन्तर्दृष्टि का विकास हुआ है तो मैं निश्चय पूर्वक कहता हूँ वह हमारी मातृभूमि यह भारत वर्ष ही है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही यहाँ पर भिन्न भिन्न धर्मों के संस्थापक आविर्भूत होकर सारे जगत को कई बार सनातन धर्म की पवित्र आध्यात्मिक धारा में नहला चुके हैं। यहाँ से उत्तर दक्षिण, पूर्व पश्चिम सर्वत्र दार्शनिक ज्ञान की प्रबल तरङ्गे बही हैं। फिर यहाँ से तरङ्ग बढ़ कर सारे संसार की सभ्य जातियों को आध्यात्मिक जीवन प्रदान करेगी। दूसरे देशों के लाखों स्त्री पुरुषों के हृदय को जलाने वाली जड़वाद रूपी अग्नि को बुझाने के लिये जिस अमृत सलिल की आवश्यकता है, वह यहीं पर वर्तमान है। भाइयो, आप विश्वास रखें, भारत ही जगत् को आध्यात्मिक धारा में नहलायगा।

मैंने सारे भारत में घूम कर जो अनुभव प्राप्त किये हैं, इससे इसी सिद्धान्त पर पहुंचा हूँ। आप लोगों में जिन्होंने विभिन्न जातियों के इतिहास को मन लगा कर पढ़ा होगा, वे भी इस विषय को अच्छी तरह से जानते होंगे। अगर और और देशों की आपस में तुलना की जाय तो यह दिखलाई पड़ेगा कि यह सहिष्णु निरीह हिन्दू जाति का संसार जितना ऋणी है, उतना और किसी जाति का नहीं है। 'निरीह हिन्दू' पद समय समय पर तिरस्कार के रूप में प्रयुक्त हुआ है लेकिन अगर किसी तिरस्कार भरे वाक्य में गहरा सत्य छिपा हुआ हो तो उसे मानना

'निरीह' हिन्दू

ही पड़ेगा। हिन्दू लोग सदा से जगत्-पिता की प्रिय सन्तान हैं। यह सच है कि संसार के दूसरे दूसरे स्थानों में सभ्यता का विकास हुआ है, यह सत्य है कि प्राचीन काल और वर्तमान काल में बहुत सी शक्ति-शाली जातियों से उच्च भाव प्रकट हुए हैं तथा समय समय पर एक जाति से दूसरी जाति में अद्भुत और अनोखे तत्व फैले हैं, यह भी सत्य है कि प्राचीन काल में और आज कल भी कोई जातीय जीवन तरंग फैल कर चारों ओर अत्यन्त शक्ति-शाली सत्य के बीजों को हटाने में समर्थ हुआ है, किन्तु भाइयो, आप यह भी देखें कि इन सब सत्यों का प्रचार, रण भेरी के निनाद और रण की सज्जा से सजी हुई गर्वीली सेना के आगमन के साथ ही हुआ था। लाखों बेक़सूर लोगों के खून को बिना बहाये, ज़मीन को खून से बिना रंगे कोई जाति दूसरी जाति को नवीन भाव प्रदान करने में समर्थ नहीं हुई है। प्रत्येक ओजस्वी भाव के प्रचार के पीछे अगणित लोगों का हाहाकार, अनाथों का क्रन्दन और विधवाओं के आँसू बहते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

विशेष कर इसी उपाय से ही दूसरी जातियों ने संसार को शिक्षा दी है, किन्तु भारत इस उपाय का अवलम्बन न करके भी हजारों वर्षों से जीवित है। जिस समय ग्रीस का अस्तित्व भी न था, जिस समय रोम भविष्य के गर्भ में छिपा हुआ था, जिस समय आज कल के युरोपियनों के पुरखे जर्मनी के घने जंगलों में नंगे घूमा करते थे और अपने शरीर को नीले रङ्ग से रङ्गा

धर्मप्राण भारत के जीवन का स्थायित्व और उसके अभाव में अन्यान्य जातियों के क्षण स्थायित्व का कारण

करते थे, उस समय भी भारत की क्रियाशीलता का परिचय पाया जाता है। और भी प्राचीन काल में, जिसका पता इतिहास को बिल्कुल नहीं है जहाँ पर किम्बदन्ती की भी पहुँच नहीं है, उस समय से लेकर आज तक एक पर एक कई भावनायें उत्पन्न हुई हैं, किन्तु उनमें से हर एक सामने शान्ति और पीछे आशीर्वाद लेकर बढ़ी है। संसार की सभी जातियों में हम लोगों ने ही कभी दूसरी जाति को युद्ध के द्वारा जीता नहीं है उसी शुभ कार्य के फल से ही हम लोग अब भी जीते जागते हैं। कभी ऐसा भी समय था जब ग्रीकों की प्रबल वाहिनी के वीर दर्प से पृथ्वी काँपती थी। अब वह कहाँ है? इस समय उनका चिन्ह तक नहीं रह गया है। आज ग्रीक देश का गौरव सूर्य अस्त हो चुका है। एक वह समय था जब रोम की श्येनांकित विजय-पताका संसार के सभी भोग्य पदार्थों के ऊपर फहराती थी। रोमन सब जगह जाते और मनुष्य जाति पर अपना शासन चलाते थे। रोम के नाम से पृथ्वी काँपती थी। आज कैपिटोलाइन* पहाड़ का भग्न स्तूप स्तूपमात्र रह

---

*कैपिटोलाइनहिल—रोम नगर सात पहाड़ों के ऊपर बना था। उनमें से जिसके ऊपर रोम के कुल देवता जुपिटर का बड़ा मन्दिर था उसका नाम कैपिटोलाइन पहाड़ था। जुपिटर के मन्दिर का नाम कैपिटल था, उसीसे पहाड़ का यह नाम रखा गया।

गया है। जहाँ पर सीज़र बादशाह प्रबल प्रताप से शासन करते थे वहाँ पर मकड़ी जाला बुनती है। और भी कई जातियाँ इसी प्रकार उठी हैं और गिर पड़ी हैं। घमण्ड में चूर हो उन्होंने अपना प्रभुत्व फैलाया और थोड़े दिन तक पराजित जातियों पर ज़ोर ज़ुल्म करके जल के बुद्बद् की तरह नष्ट हो गईं।

इस प्रकार ये सब जातियाँ एक समय अपना चिन्ह बना कर इस समय लुप्त हो गई हैं। हम लोग अब भी जीवित हैं। और आज अगर मनु इस देश में आयें तो वह यहाँ आकर कुछ भी आश्चर्य न करेंगे। वह यह नहीं समझेंगे कि मैं कहाँ अनजान जगह में आ फँसा! हज़ारों वर्ष की विचार-धारा और परीक्षा के फल स्वरूप वे प्राचीन विधान अब भी यहाँ पर वर्तमान हैं। सैकड़ों शताब्दियों के अनुभव के फल स्वरूप ये सभी आचार अब भी यहाँ पर वर्तमान हैं। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, ज्यों ज्यों विपत्तियाँ आघात करती हैं, त्यों त्यों वे और दृढ़ होते जाते हैं और भी उनमें स्थायित्व आता जाता है। इन सभी आचारों और विधानों का केन्द्र कहाँ पर है। किस हृदय से रुधिर संचालित होकर उन्हें पुष्ट रखता है, हम लोगों के जातीय जीवन का मूल सोता कहाँ पर है, यदि इसे जानना चाहें तो विश्वास रखें कि वह यहीं पर वर्तमान है। सारे संसार में घूम कर मैंने जो कुछ अनुभव प्राप्त किया है, उससे मैं इसी सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ।

दूसरी जातियों के लिये धर्म संसार के दूसरे कामों की तरह

एक कार्य मात्र है। वहाँ राजनीतिचर्चा है, सामाजिकता है, धन और प्रभुत्व द्वारा जो पाया जाय, इन्द्रियों को जिससे आनन्द मिले इसी के लिये सभी प्रयत्नशील रहते हैं। इन सब कार्यों के भीतर और भोग में निस्तेज इन्द्रियाँ किस प्रकार अधिक से अधिक उत्तेजित होंगी, इन सब चेष्टाओं के साथ साथ एक आध धर्म-कर्म भी होता जाता है। किन्तु यहीं पर भारत में ही—सभी प्रयत्न धर्म के लिये होते हैं—धर्म की प्राप्ति ही उनके जीवन का एक मात्र कार्य है। चीन जापान का युद्ध हो गया है; आप लोगों में कितने लोग उसके सम्बन्ध में जानते हैं ?

धर्म ही भारत का मुख्य अवलम्ब है और देशों का राज-नीति व समाजनीति

पाश्चात्य समाज में जो तरह तरह के बड़े बड़े राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलन होकर उसे बिल्कुल नया रूप दिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं, आप लोगों में से कितने लोग उन के सम्बन्ध में जानकारी रखते हैं। यदि रखते भी हैं तो कुछ इने गिने लोग ही—लेकिन अमेरिका में एक बड़ी भारी धर्म सभा हुई थी और वहाँ पर एक हिन्दू-सन्यासी भेजा गया था, इसे यहाँ का एक मजदूर तक भी जानता है। इससे जान पड़ता है कि हवा का रुख किस ओर को है, जातीय जीवन का मूल कहाँ है। देशी, विशेष कर विदेशी शिक्षित लोगों को प्राच्य देश-वासियों की मूर्खता के लिये शोक प्रकट करते हुए सुनता था और एक सांस में पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने वाले पर्य-टकों की पुस्तकों में इन बातों को पढ़ा करता था। अब मैं समझता

हूँ कि उनकी बातें सच भी थीं, साथ ही झूठ भी थीं। इंगलैंड, फ्रान्स, अमेरिका, जर्मनी अथवा दूसरे किसी भी देश के एक किसान को पुकार कर पूछो कि तुम किस राजनीतिक दल के हो? वह आप को बतला देगा कि वह उदार दल का अथवा रक्षणशील दल का है। वह यह भी कहेगा कि वह किस को वोट देगा। अमेरिका का किसान जानता है कि वह रिपब्लिकन दल का है या डिमोक्रेट दल का। इतना ही नहीं, वह मुद्रा नीति के संबंध में भी कुछ जानता होगा। लेकिन अगर उसके धर्म के संबन्ध में पूछिये तो वह कुछ न बतलायेगा वह कहेगा कि इस सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जानता, मैं सिर्फ गिर्जाघर जाता हूँ। अगर वह बहुत कहेगा तो यही कहेगा कि मेरे पिता ईसाई धर्म की अमुक शाखा के थे। वह जानता है कि गिर्जा में जाना ही उसके धर्म की इति श्री है!

दूसरी ओर फिर एक भारत के किसान से पूछिये। वह राजनीति के संबंध में कुछ नहीं जानता। वह आपके प्रश्न से विस्मित होकर 'हाँ' भर कह देगा। वह कहेगा, यह क्या बला है! वह साम्यवाद आदि सामाजिक आन्दोलनों के सम्बन्ध में; श्रम और पूँजी के सम्बन्ध में तथा इस प्रकार के अन्यान्य विषयों के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। उसने जीवन में कभी इस विषय को सुना भी नहीं है। वह कठोर परिश्रम करके जीविका अर्जन करता है, राजनीति वा समाजनीति वह इतना ही समझता है। लेकिन अगर उससे पूछा जाय कि तुम्हारा धर्म क्या

है ? वह अपने ललाट पर के तिलक को दिखला कर कहेगा कि मैं अमुक सम्प्रदाय का हूँ। धर्म के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर उसके मुँह से एक दो ऐसी बातें निकलेंगी जिससे मैं भी उपकृत हो सकता हूँ। मैं इसे अपने अनुभव से बतलाता हूँ। यह धर्म ही हमारी जाति की भित्ति है।

प्रत्येक मनुष्य में एक न एक विशेषता होती है, प्रत्येक मनुष्य भिन्न भिन्न मार्गों से उन्नति की ओर अग्रसर होता है। हम लोग हिन्दू हैं, हम लोग कहते हैं कि अनन्त पूर्व जन्म के कर्मफल से मनुष्य का जीवन एक विशेष निर्दिष्ट मार्ग से चला करता है, क्योंकि अनन्त अतीत काल की कर्म समष्टि ही वर्त्तमान आकार में प्रकाश पाती है। और हम लोग वर्त्तमान को जिस रूप में व्यवहार में लाते हैं, उसी के अनुसार ही हम लोगों का भावी जीवन गठित होता है। इसी कारण से देखा जाता है कि इस पृथ्वी में उत्पन्न प्रत्येक व्यक्ति का एक न एक ओर झुकाव होता है। उसी रास्ते से मानो उसे चलना होगा। इस भाव को बिना ग्रहण किये उसे छुटकारा नहीं मिल सकता। जो बात एक व्यक्ति के सम्बन्ध में हैं, वह व्यक्ति समूह के सम्बन्ध में भी लागू होती है प्रत्येक जाति का एक न एक झुकाव हुआ करता है प्रत्येक जाति का मानो विशेष जीवनोद्देश्य होता है। प्रत्येक जाति को ही मानो सारी मनुष्य जाति के जीवन को बिलकुल पूर्ण करने के लिये कोई ए विशेष व्रत-पालन करना होता है। अपने जीवन के उद्देश्य को कार्य रूप में परि-

गत करके प्रत्येक जाति को उस व्रत का उद्यापन करना होता है। आप निश्चय जानिये कि राजनीतिक वा सामरिक श्रेष्ठता कभी भी हमारी जाति का जीवन न रहा है और न भविष्य में ही कभी होगा। तो भी हम लोगों का अन्य जातीय जीवनोद्देश्य है। वह यह है, सारी जाति की आध्यात्मिक शक्ति को एकत्र करके उसकी रक्षा करना और जभी मौका हाथ लगे तभी उस एकत्रित शक्ति

की नदी में सारे संसार को प्लावित कर

जगत को भारत जो कुछ देना। जभी पारसी, ग्रीक, रोमन, दे सकता है, वह है धर्म अरब वा अँग्रेजों ने अपनी अजेय सेना

के बल पर दिग्विजय के लिए बाहर

निकल कर विभिन्न जातियों को एक सूत्र में बाँधा है तभी भारत का दर्शन और अध्यात्म विद्या इन सभी नए मार्गों से होकर संसार की विभिन्न जातियों की धमनियों में प्रवाहित हुई हैं। सारी मनुष्य जाति की उन्नति के लिये हिन्दुओं के पास भी कुछ देने को है। आध्यात्मिक प्रकाश ही संसार को भारत का दान है।

इस प्रकार अतीत काल के इतिहास को पढ़कर हम लोग देख पाते हैं कि जभी किसी प्रबल दिग्विजयी जाति ने पृथ्वी की विभिन्न जातियों को एक सूत्र में बांधा है, भारत के साथ अन्यान्य देशों की तथा जातियों का सम्मिलन हुआ है, चिर स्वातंत्र्य-प्रिय भारत की स्वतंत्रता जभी भंग हुई हैं, जभी ये बातें हुई हैं तभी उसके फल स्वरूप सारे संसार में भारतीय आध्यात्मिक नदी

पाश्चात्य देशों में उपनिषद का प्रचार

का बांध टूट पड़ा है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में विख्यात जर्मन दार्शनिक शोपेनहार* ने वेद के एक प्राचीन अनुवाद से एक फ्रान्सिसी नवयुवक द्वारा लेटिन में किए हुए अनुवाद को पढ़कर कहा था, "उपनिषदों को छोड़ कर हृदय को उन्नत करने वाला तथा शान्ति प्रदान करने वाला और कोई ग्रन्थ नहीं है। जीवित दशा में उसने मुझे शान्ति प्रदान किया है, मरने से बाद भी वह शान्ति देगा।" इसके बाद वह विख्यात जर्मन महर्षि भविष्यत वाणी करता है कि "ग्रीकसाहित्य के पुनः अभ्युदय से संसार के विचारों में जो उथलपुथल मची थी, उससे भी अधिक शक्तिशाली और बहुत दूर व्यापी भाव-क्रान्ति होगी।" आज उसकी भविष्यवाणी सफल हो रही है। जिनकी आँखे खुली हैं, जो पाश्चात्य जगत थी भिन्न भिन्न जातियों के मन की गति को समझते हैं, जो चिन्ताशील हैं, और विभिन्न जातियों के सम्बन्ध में विशेष आलोचना करते हैं वे देखेंगे कि भारतीय विचार के इस धीर, अविराम प्रवाह के द्वारा जगत की भावगति, चाल-चलन और साहित्य में

---

* मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब के बड़े भाई दारा शिकोह ने फारसी भाषा में उपनिषदों का अनुवाद किया। शुजाउद्दौला के राज-दरबार के फ्रेञ्च रेजीडेंट जेंटिल साहब ने बर्नियर के द्वारा इस अनुवाद को आँकेतिल पुपेरों नामक विख्यात पर्यटक और जेन्दवस्ता के आविष्कर्ता के पास भेज दिया। उन्होंने उसका लेटिन भाषा में अनुवाद किया। इसी अनुवाद को पढ़कर शोपेनहार आकृष्ट हुआ था।

भारतीय विचारों के प्रचार की विशेषता

क्या क्या परिवर्तन हुए हैं। तौ भी भारतीय प्रचार की एक विशेषता है। इसका थोड़ा सा आभास मैंने पहले ही दिया है। लोगों ने कभी तलवार और गोले बारूद की सहायता से अपने भावों को नहीं फैलाया है। यदि अंग्रेजी में कोई शब्द है जिसके द्वारा जगत के दिए हुये भारत के दान को प्रकट किया जा सके—यदि अँग्रेजी में कोई ऐसा शब्द है जिसके द्वारा मानव जाति के ऊपर भारतीय साहित्य का प्रभाव प्रकट किया जा सके तो वह शब्द (Fascination) है। जिसका अर्थ मम्मोहिनी शक्ति है। वह हठात मनुष्य को मुग्ध करती है, सो बात नहीं, बल्कि वह धीरे धीरे अनजाने, मनुष्य के मन पर अपना प्रभाव फैलाती है। बहुतों को भारतीय विचार, भारतीय प्रथा, भारतीय आचार व्यवहार, भारतीय दर्शन, भारतीय साहित्य पहले पहल देखने से भद्दा जँचता है लेकिन यदि वे परिश्रम के साथ आलोचना करें; मन लगाकर भारत के ग्रंथों को पढ़ें भारत के आचार व्यवहार के महान् तत्वों को अच्छी तरह समझने का प्रयत्न करें तो यह देखने में आयगा कि सैकड़ा पीछे निन्नानवे मनुष्य भारतीय विचारों की सुन्दरता से मुग्ध हो जाँयगे। संसार की आँखों के अन्तराल में स्थित, अश्रुत तथा महाफल देने वाले, उषाकाल में बहनेवाली मन्द वायु की तरह यह शान्त सहिष्णु "सर्वसह" धर्म-प्राण जाति विचार जगत में अपना प्रभाव फैला रही है।

फिर प्राचीन इतिहास की पुनरावृत्ति आरंभ हुई है। क्योंकि आज दिन, जब कि आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रबल आघात से धार्मिक विश्वासों की दीवार चूर्ण विचूर्ण हो रही है, जिस समय विभिन्न सम्प्रदाय मनुष्यों को अपने अपने मत का अनुयायी बनाने का जो विशेष प्रयत्न कर रहे हैं, जिस समय आधुनिक पुरातत्व के अनुसंधान के प्रबल मूसलाघात से प्राचीन वद्धमूल संस्कार कांच के वर्तन की तरह चूर चूर हो रहे हैं, जिस समय पाश्चात्य देशों में मज़हब केवल मूर्खों के लिये है और ज्ञानी लोग उससे घृणा करते हैं, उस समय भारत के दर्शन, भारतवासियों के मन के सर्वोच्च भाव संसार के सामने प्रकाशित होना आरंभ हो गया है। इसी से आज ये सभी महान तत्व असीम अनन्त जगत का एकत्व, निर्गुण ब्रह्मवाद, जीवात्मा का अनन्त स्वरूप ब्रह्माण्ड का अनन्तत्व—ये सभी तत्व पाश्चात्य जगत को वैज्ञानिक जड़वाद के हाथ से रक्षा करने में स्वभावतः अग्रसर हुआ है। प्राचीन सम्प्रदाय जगत को एक छोटे मिट्टी का ढेला मात्र समझता था और यह ख्याल करता था कि काल भी थोड़े ही दिन से आरम्भ हुआ है। देश काल और निमित्त के अनन्तत्व और सब से बढ़कर मनुष्य की आत्मा की महत्ता का विषय केवल

भारतीय धर्म युक्ति की भित्ति पर प्रतिष्ठित होने के कारण पाश्चात्य वैज्ञानिकों को अधर्म की ओर झुकने से बचाने को अग्रसर हुआ है।

हमारे प्राचीन शास्त्रों में वर्तमान था और सब समय यह महान् तत्व सब प्रकार के धर्मानुसंधान की भित्ति रहा है। जिस समय क्रमोन्नतिवाद, शक्तिसातत्य (Conservation of Energy) आदि आधुनिक भयानक मत सब तरह के कच्चे धर्मों के मूल में कुठाराघात कर रहे हैं उस समय उस मानवात्मा की अपूर्व सृष्टि ईश्वर की अद्भुत वाणी स्वरूप वेदान्त के अपूर्व हृदयग्राही, मन की उन्नति और विस्तार साधक तत्वों के अतिरिक्त क्या और कुछ शिक्षित मनुष्यों की श्रद्धा भक्ति को आकर्षण कर सकता है?

लेकिन मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि भारत के बाहर के देशों में भारतीय धर्म का प्रभाव कहते समय भारतीय धर्म के मूल तत्व—जिसकी बुनियाद पर भारतीय धर्म रूपी महल खड़ा है—की ओर मेरा लक्ष्य है। उससे निकली हुई शाखा प्रशाखा रूपी छोटी छोटी गौण बातें शताब्दियों से उसके साथ विजड़ित हो गई हैं, वह विभिन्न प्रथायें, देशाचार और सामाजिक कल्याण सम्बन्धी अच्छे बुरे विचार 'धर्म' संज्ञा के अन्तर्गत नहीं हो सकते। हम यह भी जानते हैं कि हमारे शास्त्रों में दो प्रकार के सत्य का निर्देश किया गया है और दोनों में साफ साफ फर्क बतलाया गया है।—एक सनातन सत्य है। यह मनुष्य का स्वरूप, आत्मा का स्वरूप ईश्वर के साथ मनुष्य का सम्बन्ध, ईश्वर का स्वरूप, पूर्णत्व, सृष्टितत्व की अनन्तता जगत

भारतीय धर्म के दो विभाग-सनातन और युग धर्म

शून्य से नहीं पैदा हुआ है, पूर्वस्थित किसी पदार्थ का विकास मात्र है, यह मतवाद; युग प्रवाह सम्बन्धी अद्भुत नियमावली और इस तरह के अन्यान्य तत्वों के ऊपर प्रतिष्ठित है। प्रकृति का सार्वजनीय सार्वकालिक और सार्वदेशिक विषय ये सभी सनातन तत्व की भित्ति हैं। इन्हें छोड़कर और अनेक गौण विषय भी हमारे शास्त्रों में दिखलाई पड़ते हैं, उनके द्वारा हमारे दैनिक जीवन के कार्य नियमित होते हैं। उन्हें श्रुति के अन्तर्गत नहीं कहा जा सकता है, वे वास्तव में स्मृतियों और पुराणों के अन्तर्गत कहे जा सकते हैं। इनके साथ ऊपर कहे हुए तत्वों का कोई सम्पर्क नहीं है। हमारी आर्य जाति के भीतर भी ये बातें क्रमशः परिवर्तित होकर विभिन्न आकार में परिणत होती हैं, ऐसा देखने में आता है। एक युग के लिये जो विधान है, वह दूसरे युग के लिये नहीं है। जिस समय एक युग के बाद दूसरा युग आयगा, वे फिर दूसरा रूप धारण कर लेंगी। महामना ऋषि लोग उत्पन्न होकर देश काल के उपयुक्त नये नये आचार प्रवर्तन करेंगे।

जीवात्मा, परमात्मा और ब्रह्माण्ड के इन सभी अपूर्व चित्र को उन्नत करने वाले, क्रमशः विकाश शाली धाराओं के भित्ति स्वरूप महान् तत्व भारत में ही उत्पन्न हुए हैं। केवल भारत में ही मनुष्य क्षुद्र जातीय देवताओं के लिये 'मेरा ईश्वर सच्चा है, तुम्हारा ईश्वर झूठा है आओ, युद्ध द्वारा इस का निपटारा करें' कह कर पड़ोसियों के साथ झगड़ा फसाद नहीं करते। छोटे छोटे देवताओं के लिये युद्ध जैसे संकीर्ण भाव केवल इस भारत में ही

कभी दिखलाई नहीं पड़ते। ये सभी महान् मूल तत्व मनुष्यों के अनन्त स्वरूप के ऊपर प्रतिष्ठित होने से ही हजारों वर्षों पहले की तरह आज भी मनुष्य जाति के कल्याण के लिये शक्ति-सम्पन्न हैं। जब तक यह पृथ्वी क़ायम रहेगी, जब तक कर्मफल रहेगा, जब तक हम लोग व्यष्टि जीव रूप में जन्म लेते रहेंगे, और जब तक अपनी शक्ति के द्वारा अपना भाग्य स्वयं बनाना होगा तब तक उनकी यह शक्ति वर्तमान रहेगी।

सब से बढ़कर भारत संसार को क्या तत्व सिखायगा, यह बतलाते हैं। यदि हम लोग विभिन्न जातियों में धर्म की उत्पत्ति और परिणति की प्रणाली को गौर से देखें तो हमें सर्वत्र यही देखने में आयगा कि पहले प्रत्येक जाति के अलग अलग देवता थे। इन सब जातियों में यदि आपस में विशेष सम्बन्ध होता तो इन सभी देवताओं का एक साधारण नाम होता, जिस प्रकार वेबिलोनीय देवता है। जिस समय वेबिलोनियन भिन्न भिन्न जातियों में बँटे हुए थे उस समय उनके साधारण देवता का नाम बाल (Baol) था। इसी तरह यहूदियों के भिन्न भिन्न देवताओं का साधारण नाम 'मोलक' (Moloch) था। और भी देखने में आता है कि इन सभी विभिन्न जातियों में कोई खास जाति दूसरी जातियों से श्रेष्ठ हो जाती और वह अपने राजा को सभी का राजा कहने लगती थी। इस भाव से फिर स्वभावतः यह होता कि वह जाति अपने देवता को भी और दूसरी जातियों का देवता मनवा लेती थी। वेबिलोनिया के लोग कहा करते थे कि बाल

मेरोडक देवता सब से बढ़ कर है और सभी देवता घटिया हैं। मोलक याभे और मोलकों से श्रेष्ठ समझे जाते थे। देवताओंका यह बड़प्पन तथा हीनता युद्ध के द्वारा निश्चित होता था। भारत में भी देवताओं का यह संघर्ष, यह प्रतिद्वन्दिता विद्यमान थी। प्रतिद्वन्दी देवता अपने बड़प्पन को कायम रखने के लिये आपस में प्रतियोगिता किया करते थे। लेकिन भारत के तथा सम्पूर्ण जगत् के सौभाग्य से इस अशान्ति और कोलाहल के बीच से 'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋग्वेद १। १६४। ४६) 'एक ही सत्ता है, साधु लोग उसे तरह तरह से वर्णन करते हैं।' यह पवित्र वाणी निकली थी। शिव, विष्णु की अपेक्षा बड़े हैं अथवा विष्णु ही सब कुछ हैं, शिव उनके मुकाबले कुछ नहीं हैं। यह बात नहीं थी। एक भगवान को ही कोई शिव, कोई विष्णु तथा और दूसरे नामों से पुकारते थे। नाम भिन्न भिन्न थे, परन्तु वस्तु एक ही थी। ऊपर कही हुई कई बातें भारत के सम्पूर्ण इतिहास को पढ़ने से ज्ञात होंगी। सम्पूर्ण भारत का इतिहास तेजस्वी भाषा में उसी एक मूल तत्व की पुनरुक्ति मात्र है। इस देश में यह तत्व बार बार कहा गया है, अन्त में वह इस जाति के रक्त के साथ मिल गया है, इस जाति की धमनियों में प्रवाहित खून की प्रत्येक बूँद में वह मिल कर नस नस में दौड़ रहा है। वह जातीय जीवन का एक अंग हो गया है, जिस वस्तु से यह विराट जातीय शरीर

पाश्चात्य देश में तथा भारत में विभिन्न देवताओं का संघर्ष

बना है, उसका अंग हो गया है। इस प्रकार यह भूमि दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता दिखलाने के लिये प्रसिद्ध रही है। इसी शक्ति के बल पर हम लोग अपनी इस मातृ-भूमि में सभी धर्मों, सभी सम्प्रदायों को आदर-पूर्वक स्थान देते आये हैं।

इस देश में एक दूसरे के विरोधी बहुत से सम्प्रदाय हैं और सभी एक दूसरे का बिना विरोध किये ही रह रहे हैं। इस अपूर्व बात का मुख्य कारण है, दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता। तुम चाहे द्वैतवादी हो, चाहे अद्वैतवादी। तुम्हारा चाहे यह विश्वास हो कि तुम भगवान के दास हो, दूसरे का यह विश्वास हो वह भगवान के साथ अभिन्न है। लेकिन दोनों ही सच्चे हिन्दू हैं। यह किस प्रकार सम्भव है? इस महावाक्य को पढ़ो, तभी तुमको मालूम होगा कि किस प्रकार यह संभव है, 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' हमारे देश-भाइयो, सबसे बढ़कर इस तत्व को संसार को सिखलाना होगा। दूसरे देशों के बड़े पढ़े लिखे लोग नाक-भौं सिकोड़ कर हमारे धर्म को मूर्ति-पूजक बतलाते हैं। मैंने उन्हें ऐसा करते देखा है, लेकिन वे लोग शान्ति के साथ यह नहीं सोचते कि उनके मस्तिष्क में कैसे भयानक कुसंस्कार मौजूद हैं। अब भी चारों तरफ़ यही भाव, यही घोर साम्प्रदायिकता, मन की यह तुच्छ संकीर्णता देखने में आती है। जो कुछ उनका है, वह तो बहुत ही बहुमूल्य है! अर्थोपासना ही उनके मत में एक मात्र सद्व्यवहार है। उनका जो कुछ है, वही यथार्थ में उपार्जन की वस्तु है, और सब कुछ नहीं है। अगर वह मिट्टी

की कोई तुच्छ वस्तु बनाते हैं, अथवा किसी यन्त्र का आविष्कार करने में समर्थ होते हैं; तो और सब वस्तुओं को छोड़कर उसी को अच्छा कहना होगा! संसार में शिक्षा का काफी प्रचार होने पर भी सर्वत्र यही दशा है। किन्तु वास्तविक जगत में अब भी शिक्षा की आवश्यकता है—संसार में अब भी सभ्यता का प्रयोजन है। और कहाँ तक कहें, अब भी कहीं पर सभ्यता का आरंभ भी नहीं हुआ है। अब भी मनुष्यों में सैकड़ा पीछे ९९ लोग थोड़े बहुत असभ्यावस्था में पड़े हुए हैं। विभिन्न पुस्तकों में तुम ये सब बातें पढ़ सकते हो, दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता और इस प्रकार के तत्वों के सम्बन्ध में हम लोग भले ही पढ़ें, लेकिन मैं स्वयं अपने अनुभव से कहता हूँ कि वास्तव में इस भाव की सत्ता संसार में बहुत कम है। सौ में ९९ मनुष्य इन बातों को अपने मन में स्थान नहीं देते। पृथ्वी के जिस किसी भी देश में मैं गया हूँ, वहीं देखा है कि दूसरे धर्मावलम्बियों के उपर घोर अत्याचार हो रहे हैं। नये विषयों को सीखने के सम्बन्ध में पहले जो आपत्तियाँ पेश की जाति थीं, वे अब भी पेश की जाती हैं। संसार में जितना दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सहानुभूति है, वह कार्यरूप में यहीं पर है, इसी आर्य-भूमि में वर्तमान है, और कहीं पर भी नहीं है। यहीं पर भारतवासी

उसके फल-स्वरूप केवल भारत में ही वास्तव में दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता मौजूद है

मुसलमानों के लिये मस्जिद, और ईसाइयों के लिये गिर्जा निर्माण करते हैं, और कहीं पर नहीं। अगर तुम किसी दूसरे देश में जाकर मुसलमानों से अथवा अन्य धर्मावलम्बियों को अपने लिये एक मन्दिर बनवाने के लिये कह तो देखो कि वे कैसी सहायता करते हैं इसके बदले में वे उस मन्दिर को, और वश चले तो तुम्हारे देह मन्दिर को भी फोड़ डालने की चेष्टा करेंगे। इसी कारण से जगत के लिये इस शिक्षा की विशेष आवश्यकता है। संसार को दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता दिखलाने की शिक्षा देने की परम आवश्यकता है। शिव महिन्म स्तोत्र में कहा है!

"त्रयी सांख्यं योगः पशुपति मतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमितिच।
रुचिनां वैचित्र्यादृजुकुटिल नाना पथजुषां,
नृणामेको गम्य स्त्वमसि पयसामर्णव इव।"

अर्थात् "वेद, सांख्य, योग, पाशुपत और वैष्णव इन सभी भिन्न भिन्न मतों के सम्बन्ध में कोई किसी को अच्छा, किसी को हितकर बतलाता है, जिस प्रकार समुद्र में सभी नदियाँ जाकर मिल जाती हैं, वैसे ही रुचि भेद से सरल कुटिल नाना मार्गों के चलने वाले लोगों के लिये आप ही एक मात्र अभिष्ट स्थान हैं।"

भिन्न भिन्न मार्गों से लोग भले हो जा रहे हैं, किन्तु सभी एक स्थान को चले हैं। कोई किसी टेढ़े मेड़े रास्ते से घूम फ़िर कर, अथवा कोई सरल रास्ते से जा सकता है, लेकिन अन्त में,

हे प्रभो, सभी आपके पास आयेंगे। तभी तुम्हारी भक्ति और तुम्हारी शिव दर्शन की सम्पूर्णता प्राप्त होगी, जब तुम उन्हें केवल शिवलिंग के ही रूप में देखोगे सो बात 'नहीं', उन्हें सर्वत्र देखोगे। वही यथार्थ में साधु, वास्तव में हरि-भक्त हैं, जो ईश्वर को सब जीवों और सब भूतों में देख पाते हैं। अगर तुम वास्तव में शिव के भक्त हो तो तुम उन्हें सब जीवों और सब भूतों में देखोगे। जिस नाम वा जिस रूप में उनकी क्यों न उपासना की जाय, यह समझना चाहिये कि यह उन्हीं की उपासना हो रही है। काबा की तरफ़ मुख करके कोई उठे बैठे अथवा गिर्जाघर में अथवा बौद्ध चैत्य में जाकर उपासना क्यों न करे, ज्ञात रूप में अथवा अज्ञात रूप में वह उन्हीं की उपासना करता है। जिस किसी नाम से, जिस किसी मूर्ति के उद्देश्य से, जिस भाव से पुष्पांजलि क्यों न दी जाय, वह उन्हीं के पाद पदों में पहुँचेगी। क्योंकि वह सब के एक मात्र स्वामी हैं सब आत्मा के अन्तरात्मा स्वरूप हैं। संसार में किस वस्तु का अभाव है, इसे वह हमारी तुम्हारी अपेक्षा अधिक समझते हैं। सब तरह के भेद भाव दूर हो जाँय यह बिल्कुल असंभव है। भेद तो बना ही रहेगा। विचित्रता से रहित जीवन असंभव है। विचारों का यह संघर्ष और वैचित्र्य ही ज्ञान, उन्नति आदि सभी बातों के मूल में है। संसार में अनेक तरह के प्रतिद्वन्दी भाव-समूह मौजूद रहेंगे ही। लेकिन इस कारण से एक दूसरे से घृणा की जाय, एक दूसरे का विरोध किया जाय, इसका कोई

अर्थ नहीं। इस लिये उस मूल सत्य की शिक्षा फिर से देनी होगी जो केवल यहीं से प्रचारित हुई थी। और एक बार संसार के सामने इस सत्य का प्रचार करना होगा। मैं यह बात क्यों कह रहा हूँ ? यह सिर्फ हम लोगों के ग्रन्थों में ही लिखा है, सो बात नहीं, हमारे जातीय साहित्य के प्रत्येक विभाग में, हमारे जातीय जीवन में यह प्रवेश कर गया है। केवल यहीं पर यह दैनिक जोवन में हो गया है और आँख वाले लोग स्वीकार करेंगे कि यहाँ को छोड़ कर और कहीं पर यह कार्य रूप में परिणत नहीं हुआ है। इस तरह से हम लोगों को जगत को शिक्षा देनी होगी। भारत इससे भी बढ़कर अन्यान्य उच्च भावों की शिक्षा देने में समर्थ हैं, लेकिन वह केवल पंडितों के लिये है। यह शान्त भाव, यह तितिक्षा, यह सहिष्णुता, यह सहानु-भूति और भ्रातृ भाव रूपी महती शिक्षा बूढ़े, बच्चे, स्त्री-पुरुष, शिक्षित, अशिक्षित सब जाति सब वर्ण के लोग सीख सकते हैं। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'।

भारत का भविष्य*

यह वही प्राचीन भूमि है जहाँ पर तत्व-ज्ञान ने और देशों में जाने के पहले अपना निवास-स्थान बनाया था। यह वही भारत भूमि है, जहाँ का आध्यात्मिक प्रवाह सहस्र धारा वाली नदी के समान है। यह वही भारत है जिस भूमि की मिट्टी परमपूज्य ऋषि-महर्षियों के चरण-रज से पवित्र हो चुकी है, जहां पर पहले पहल अन्तर्जगत के रहस्य-उद्घाटन की चेष्टा हुई थी, जहां पर मानवी मन अपने स्वरूप के अनुसंधान के लिये पहले अग्रसर हुआ था। यहीं पर जीवात्मा के अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर और माया के संबन्ध में विचार उत्पन्न हुए थे। धर्म और दर्शन के सर्वोच्च आदर्श यहीं पर चरम-विकाश को प्राप्त हुए थे। यह वही भूमि है जहाँ से धर्म और दार्शनिक तत्व-समूह ने बरसाती नदी के समान प्रवाहित हो सारे संसार को सराबोर कर दिया था और फिर यहीं से वैसी ही तरंगें उत्पन्न होकर तेजरहित जातियों के भीतर जीवन और तेज का संचार करेंगी। यह वही भारत है जो सैकड़ों शताब्दियों

प्राचीन भारत

---

* यह व्याख्यान मद्रास में बड़े भारी जनसमूह के बीच दिया गया था।

के अत्याचार, अनेकों विदेशी आक्रमण और सैकड़ों प्रकार के राजनीतिक उथल-पुथलों को सहते हुये भी अक्षुण्ण बना हुआ है। यह वही भूमि है जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के कारण पहाड़ की तरह, अब भी अचल होकर खड़ी है। हम लोगों के शास्त्रों में वर्णित आत्मा जिस प्रकार अनादि, अनन्त और अमृत रूप है, हमारे इस भारत भूमिका जीवन भी वैसा ही है। और हम लोग इसी देश की सन्तान हैं।

हे भारत संतानो, मैं आज आप लोगों से बहुत काम की बातें कहने के लिये आया हूँ और भारत भूमि के पूर्व गौरव के स्मरण दिलाने का उद्देश्य आप लोगों को ठीक मार्ग पर चलाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मुझसे लोगों ने कई बार कहा है, कि पहले के गौरव के स्मरण से केवल मन की अवनति होती है, और दूसरा नतीजा नहीं निकलता, इसलिये हम लोगों को, भविष्यत की ओर निगाह रख कर कार्य करना होगा। यह सच बात है। किन्तु यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि अतीत के गर्भ में ही भविष्य का जन्म होता है। इसलिये जहां तक हो सकें, पीछे की ओर निगाह दौड़ाओ, पीछे की ओर जो अनन्त निर्झरिणी प्रवाहित हो रही है, उसका जल खूब जी भर कर पान करो, इसके बाद सामने दृष्टि करके आगे को बढ़ो और भारत प्राचीन काल में जितने ऊँचे गौरव शिखर पर आरूढ़ हुआ था,

अतीत गौरव का चिन्तन भावी कार्यों के लिये उत्तेजक होता है

उसे उसकी अपेक्षा उच्चतर, उज्ज्वलतर और महिमाशाली करने का प्रयत्न करो। हम लोगों के पुरखे महापुरुष थे। हम लोगों को पहले यह जानना चाहिये। हम लोगों को पहले यह समझना चाहिये कि हम लोगों का गठन किस प्रकार से हुआ है, कौन सा रक्त हम लोगों की धमनियों में प्रवाहित हो रहा है। इसके बाद उन पुरुषों के खून में विश्वास रखकर, उनके अतीत काल के कार्यों में विश्वास जमा कर, उस अतीत की महत्ता की धारणा द्वारा उससे भी श्रेष्ठ भव्य भारत का गठन करना होगा। यह ठीक है कि बीच बीच में यहां पर भी अवनति का युग आया है। मैं उसे ज्यादा ख्याल में नहीं लाता, हम सभी लोग उसे जानते हैं। उसकी भी आवश्यकता थी। एक बड़े भारी पेड़ से सुन्दर पका फल उत्पन्न हुआ, वह फल मिट्टी में गिर गया। और उससे फिर अंकुर जमा और वह फल से भी बढ़िया हुआ। इसी प्रकार जिन अवनति के युगों के बीच से हम लोगों को आना पड़ा है, उसकी भी आवश्यकता थी। उसी अवनति से ही भावी भारत का अभ्युदय हो रहा है; अभी उसका अंकुर दिखलाई पड़ रहा है, उससे नये पत्ते निकल रहे हैं। एक बड़ा भारी 'उर्द्ध मूलम्' वृक्ष बढ़ना आरम्भ हुआ है और मैं आज उसी के सम्बन्ध में आप लोगों से कुछ कहने के लिये यहाँ खड़ा हुआ हूँ।

अन्यान्य देशों की समस्याओं से इस देश की समस्यायें जटिल और पेचीदी हैं। जाति-उपजाति का भेद, धर्म, भाषा,

इस देश की समस्यायें दूसरे देशों से जटिल हैं

शासन-प्रणाली, इन सबों को लेकर एक जाति गठित हुई है। यदि एक एक जाति को लेकर इस जाति के साथ तुलना की जाय तो यह देखने में आएगा कि अन्यान्य जातियां जिस जिस उपादान से गठित हुई हैं, वह संख्या में उनसे कम है। आर्य, द्रविड़, तातार, तुर्क, मुग़ल, योरोपीय सभी जातियों का रक्त इस देश में रहा है।

धर्म ही इस जटिल समस्या की भी मांसा करने वाला है।

यहाँ पर भिन्न-भिन्न भाषाओं का अजब जमघट है और आचार व्यवहार में भारत की दो उपजातियों में विभिन्नता दिखलाई पड़ती है, उतना योरोपीय और पूर्वी जातियों में भी भेद नहीं। हम लोगों का पवित्र परम्परागत उपदेश हमारा धर्म ही हम लोगों की सम्मिलन भूमि है—इसी भित्ति पर ही हम लोगों को जातीय गठन करना होगा। योरप में राजनीति ही जातीय ऐक्य की भित्ति है। किन्तु एशिया में धर्म ही ऐक्य का मूल है। इसलिये भावी भारत के गठन में धर्म की एकता अनिवार्य रूप से आवश्यक है। इस भारत के पूर्व से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से लेकर दक्षिण तक सर्वत्र सब को एक धर्म स्वीकार करना होगा। एक धर्म की बात को मैं किस अर्थ में व्यवहार करता हूँ? ईसाई, मुसलमान या बौद्धों में जिस प्रकार एक धर्म है, मैं उस तरह का धर्म नहीं कहता। मैं जानता हूँ, हम लोगों के विभिन्न सम्प्रदायों

भिन्न भिन्न धर्म-सम्प्रदायों में एकता लाना आवश्यक है

के सिद्धान्त में चाहे जितना ही अन्तर क्यों हो, वे चाहे कितने ही मत भेद रखने वाले क्यों न हो, तो भी कितने सिद्धान्त ऐसे हैं, जिन पर सभी सम्प्रदाय एक मत हैं। इसलिये हमारे सम्प्रदायों के कितने साधारण सिद्धान्त हैं और उन्हें स्वीकार कर लेने पर हम लोगों का धर्म, सभी सम्प्रदायों और सभी व्यक्तियों को स्वतंत्र रूप से सोचने विचारने और कार्य करने की पूरी आज़ादी देता है। हम सभी लोग यह जानते हैं कि हम लोगों में जो लोग कुछ विचारशील हैं, वे ही इसे जानते हैं। और मैं चाहता हूँ कि हम लोगों के धर्म के जीवन-दाता साधारण तत्व इस देश के स्त्री-पुरुष बूढ़े, जवान सब में प्रचारित हो जाँय। सभी लोग उन्हें जानें, समझें और अपने जीवन में उसे परिणत करने की चेष्टा करें। इसलिये यही लोगों का प्रथम कार्य है। हम लोग देखते हैं कि

सर्वसाधारण में धर्म प्रचार ही जातीय-सम्मिलन का पहला मार्ग है

एशिया, विशेषतः भारतवर्ष में जाति, भाषा तथा समाज सम्बन्धी सभी बाधायें धर्म की सम्मिलन कारिणी शक्ति के निकट उड़ जाती हैं। मैं जानता हूँ कि भारतवासियों की धारणा है कि आध्यात्मिक आदर्श से ऊँचा आदर्श और कुछ नहीं है, यही भारतीय जीवन का मूल मंत्र है। मैं यह भी जानता हूँ कि हम लोग थोड़ी ही बाधाओं के बीच कार्य करने में समर्थ हैं।

धर्म सब से ऊँचा आदर्श है, यह सच है, लेकिन मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता। मैं कहता हूँ कि भारत के लिये कार्य करने का यही एक मात्र उपाय है, धर्म में दृढ़ हुए बिना दूसरी ओर निगाह डालने का परिणाम यह होगा कि हम लोगों का सर्वनाश हो जायगा। इसलिये भारत के भिन्न भिन्न धर्मों का सम्मिलन ही भावी भारत का प्रथम सेतु है, युग युगान्तर से अवस्थित इस भारत रूपी पर्वत पर यही सीढ़ी खोदनी पड़ेगी। हम लोगों को यह जानना होगा कि द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, शैव, वैष्णव, पाशुपत आदि के सभी सम्प्रदायों में हिन्दू धर्म के ही कितने एक साधारण भाव विद्यमान हैं। और हम लोगों के अपने कल्याण के लिये, अपनी जाति की भलाई के लिये आपस में छोटे छोटे विषयों को लेकर विषाद और वितंडावाद छोड़ने का समय आ गया है। यह निश्चय रूप से जानिये कि ये वाद-विवाद बिल्कुल भूल हैं, हमारे शास्त्र इसका तीव्र प्रतिवाद करते हैं। हम लोगों के पुरखे भी इसका अनुमोदन नहीं करते और जिनके वंशधर होने का हम लोग दावा करते हैं, जिनका रक्त हम लोगों की धमनियों में प्रवाहित हो रहा है, वे महापुरुष अपनी सन्तान को साधारण साधारण बातों को लेकर लड़ते देख कर अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते होंगे।

धर्म के साधारण तत्वों पर विश्वास जमा कर विरोध दूर करना कर्तव्य है

धर्म का इस प्रकार सम्मिलन होने के साथ ही साथ अन्यान्य

विषयों में भी उन्नति अवश्यम्भावी है। यदि रक्त साफ और ताजा रहे तो देह में कोई रोग का कीटाणु प्रवेश नहीं कर सकता। धर्म ही हम लोगों का रक्त है। यदि इस रक्त-प्रवाह में कोई बाधा नहीं पहुँचे और वह शुद्ध और ताजा रहे तो सभी बातों में कल्याण होगा। यदि यह रक्त शुद्ध हो तो राजनैतिक, सामाजिक अथवा और कोई भी बाहरी दोष हो—इतना ही नहीं, हमारे देश की घोर दरिद्रता भी—दूर हो जायेंगे। क्योंकि यदि रोग-जीवाणु ही शरीर से दूर हो जाँय तो उस रक्त में बाहरी वस्तु किस प्रकार से प्रवेश करेगी, आधुनिक चिकित्सा शास्त्र का उदाहरण देकर अपने विषय को और भी स्पष्ट करता हूँ। रोग होने पर दो बातों की आवश्यकता होती है। बाहरी कोई विषाक्त जीवाणु और उस शरीर की अवस्था विशेष। जब तक शरीर अपने में रोग-जीवाणु को प्रवेश करने नहीं देता, जब तक देह की जीवनी शक्ति क्षीण होकर रोग के जीवाणु को प्रवेश करने और बढ़ने नहीं देती तब तक संसार के किसी रोग-जीवाणु में शक्ति नहीं कि वह शरीर में रोग उत्पादन कर सके। वास्तव में प्रत्येक शरीर में लाखों जीवाणु आते जाते रहते हैं, जब तक शरीर में तेज रहता है, तब तक उनके अस्तित्व का पता नहीं चलता। जब शरीर दुर्बल हो जाता है उसी समय ये जीवाणुयें शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं। जातीय जीवन के सम्बन्ध में भी यही

धर्म की उन्नति से सभी उन्नति संभव है

बात है। जिस समय जातीय शरीर दुर्बल हो जाता है, उस समय उस जाति का राजनैतिक, सामाजिक, मानसिक और शिक्षा सम्बन्धी विषयों में सब प्रकार के रोगाणु प्रवेश करते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं। इसीलिये इसके प्रतिकार के लिये यह देखना होगा कि रोग का मूल कारण क्या है, और रक्त की सब तरह की खराबी दूर करनी होगी। उस समय एक मात्र कर्तव्य होगा—लोगों में शक्ति का संचार, रक्त का शुद्ध करना, शरीर को तेज युक्त करना जिससे वह सब तरह के बाहरी विषों को देह में प्रवेश करने से रोके और भीतरी विष को बाहर निकाल सके। हमने पहले ही देखा है, हम लोगों का धर्म ही हमारे तेज, वीर्य, यही क्यों, जातीय जीवन की मूल भित्ति है।

मैं इस समय यह विचार नहीं करने जा रहा हूँ कि धर्म सच्चा है या झूठा। न मैं यही विचार करने वाला हूँ कि धर्म ही हमारे जातीय जीवन की बुनियाद डालने में कल्याणकर होगा या अकल्याणकर। किन्तु अच्छा हो या बुरा, धर्म ही पर हमारे जातीय जीवन की भित्ति रही है। आप उसे छोड़ नहीं सकते। चिरकाल से वही आप लोगों के जातीय जीवन की भित्ति रहा है, इसलिये धर्म में मेरा जैसा विश्वास है, आप लोगों का वैसा विश्वास नहीं है, तो भी आप लोगों को इस धर्म का अवलम्बन करना ही होगा। आप इस धर्म-बन्धन में सदा से बँधे हुए हैं। अगर आप इसे छोड़ देंगे तो आप नष्ट-भ्रष्ट हो जायँगे। धर्म ही हम लोगों के जाति का जीवन स्वरूप है, इसे

दृढ़ करना होगा। आप लोग जो सैकड़ों शताब्दियों से अत्याचार सहते सहते अब भी जीते जागते हैं, उसका कारण यह है कि आपने यत्नपूर्वक उसकी रक्षा की है, उसके लिये और सब स्वार्थों का त्याग किया है। आपके पुरखों ने इस धर्म की रक्षा के लिये सब कुछ साहसपूर्वक सहा था, यहीं क्यों, वे मृत्यु तक को आलिंगन करने के लिये तैयार रहते थे।

पुराने मन्दिर शिक्षा के केन्द्र थे।

विदेशियों ने आकर मन्दिर पर मन्दिर गिराये हैं, लेकिन ज्योंही वे अत्याचार बन्द हुए हैं, फिर उस स्थान पर मन्दिर उठ गये हैं। अनेक ग्रन्थ पढ़कर जो नहीं सीखा जा सकता, वह गुजरात के सोमनाथ मन्दिर की तरह दक्षिणात्य के अनेक मन्दिर आपको सिखायेंगे। आपकी जाति के इतिहास के सम्बन्ध में बहुत गम्भीर बातें सिखायेंगे। आप उन्हें ध्यानपूर्वक देखेंगे तो पता चलेगा कि उक्त मन्दिर सैकड़ों आक्रमणों और सैकड़ों पुनरुभ्युदय के चिन्ह धारण किये हुए हैं। बार बार नष्ट होते हैं और फिर वह भग्नावशेष फिर नये रूप में उठ कर पहाड़ की तरह खड़े होते हैं।

धर्म त्याग से नाश होगा

इसलिये यहीं पर इसी धर्म में हमारे जातीय मन, जातीय प्राण-प्रवाह देख पायेंगे। इसका अनुसरण कीजिये, आप महान् पद को प्राप्त होंगे। उसे परित्याग करने पर आप की मृत्यु निश्चित है। इस जातीय जीवन-प्रवाह के विरुद्ध जाने

की चेष्टा करने पर उसका एक मात्र परिणाम होगा— विनाश ! मैं यह बात नहीं कहता कि और किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं है। मेरे कहने का अभिप्राय यही है कि और सब चीज़ें गौण हैं, धर्म ही मुख्य है। भारतवासी सबसे पहले धर्म को चाहते हैं, इसके बाद अन्यान्य वस्तुओं को चाहते हैं। इस धर्म-भाव को विशेष रूप से जागृत करना होगा।

वह किस प्रकार से सिद्ध होगा ? मैं आप लोगों से अपनी सारी कार्य-प्रणाली बतलाऊँगा। जब मैं मद्रास से अमेरिका के लिये रवाना हुआ उसके कई साल पहले से ही मेरे मन में ये संकल्प थे और मैं अमेरिका और इंगलैंड गया था, उसका कारण भी यही था। धर्म-सभा के लिये मेरे मन में कोई बड़ी इच्छा न थी, वह तो मेरे जाने का एक मौक़ा मिल गया था। मेरे मन में जो संकल्प-विकल्प उठ रहे थे, उन्होंने मुझे समग्र संसार में घुमाया है।

मेरी कार्य-प्रणाली

मेरा वह संकल्प यही है कि शास्त्रों में संचित, मठों और वनों में गुप्त भाव से रक्षित, बहुत थोड़े लोगों से अधिकृत धर्म-रत्नों को प्रकाश में लाऊँ। शास्त्रों में बन्द तत्व जो थोड़े से लोगों के हाथ में गुप्तभाव से छिपे हुए हैं उन्हें उनके हाथ से ले लेने ही से काम न चलेगा, उन्हें उससे भी दुर्भेद्य पिटारी अर्थात् जिस भाषा में ये तत्व रक्षित हैं उसके शब्दों के आवरण से बाहर निकालना पड़ेगा। थोड़े में मुझे यह कहना है कि मैं इन तत्वों को सर्व

साधारण को बतला देना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि ये तत्व प्रत्येक भारतवासी की, चाहे वह संस्कृत जानता हो या न जानता हो, सम्पत्ति हो जाय। इस संस्कृत भाषा की, जो हम लोगों के लिये गौरव की वस्तु है, कठिनता ही इन भावों के प्रचार में एक बहुत बड़ी बाधा है। और जब तक हमारी सारी जाति (यदि यह सम्भव हो) अच्छी तरह से संस्कृत भाषा में पंडित न हो जाय, तब तक यह बाधा दूर नहीं हो सकती। संस्कृत भाषा कितनी कठिन भाषा है, यह बात आप इतना ही कहने से समझ जायँगे कि जीवन भर से इस भाषा का अध्ययन कर रहा हूँ तौ भी प्रत्येक नया संस्कृत ग्रंथ ही मुझे नया जान पड़ता है। तब जिसे इस भाषा को अच्छी तरह से सीखने का कभी अवसर ही नहीं मिलता, उसके लिये यह कितना कठिन होगा, इसे आप लोग अनायास ही समझ जायँगे। इसलिये आप लोगों को चलती हुई भाषा में ही इन सब तत्वों की शिक्षा देनी होगी।

साथ साथ संस्कृत की शिक्षा भी होती रहेगी। क्योंकि संस्कृत की शिक्षा से ही, संस्कृत शब्दों के उच्चारण से ही जाति में,

साथ साथ संस्कृत सिखाना होगा

एक गौरव, एक शक्ति का भाव जागृत होगा। भगवान रामानुज, चैतन्य और कबीर ने भारत की नीची जातियों को उठाने की कोशिश की थी, उनकी कोशिशों का यह फल हुआ था कि उनके जीवन में अद्भुत प्रभाव पड़ा था। किन्तु बाद में उनके कार्य का ऐसा बुरा परिणाम क्यों हुआ;

उसका भी निश्चित कुछ कारण है क्योंकि उन आचार्यों के मरने के बाद एक शताब्दी भी न बीतने पायी थी कि उन्नति का मार्ग बन्द हो गया ? इसका उत्तर यही है कि उन्होंने नीची जातियों को उन्नत तो किया था, उन जातियों को उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाने की उनकी आन्तरिक इच्छा थी परन्तु उन्होंने सर्व साधारण में संस्कृत की शिक्षा देने की कोशिश नहीं की थी। यही नहीं, इतने बड़े ज्ञानी बुद्ध देव हुए उन्होंने भी सर्व-साधारण में संस्कृत की शिक्षा बन्द करके एक बड़ी जबर्दस्त भूल की थी। उन्होंने उस समय इसी बात की चेष्टा की थी कि शीघ्र से शीघ्र हमारे कार्य का फल निकले। इसलिये संस्कृत भाषा में लिखे हुए भावों को उस समय की प्रचलित भाषा पाली में अनु-वाद करके उनका प्रचार किया था। उन्होंने यह अच्छा किया था, क्योंकि उन्होंने सर्वसाधारण की भाषा में लोगों को उपदेश दिया था। यह अच्छा ही हुआ था; उनके द्वारा प्रचारित भाव जल्द से जल्द चारों तरफ फैलने लगे थे, बहुत दूर दूर वे भाव चले गये थे, लेकिन साथ साथ संस्कृत भाषा का विस्तार होना भी उचित था। ज्ञान का विस्तार तो हुआ लेकिन उसके साथ साथ 'गौरव बुद्धि' और 'संसार' न पैदा हुआ। जब तक शिक्षा मज्जागत होकर संस्कार में परिणत नहीं हो जाती, तब तक ज्ञान अनेक प्रकार के भावों के बीच ठहर नहीं सकते। आप संसार को चाहे जितना भी ज्ञान दीजिये, किन्तु उसका विशेष फल न होगा। उस ज्ञान को मज्जागत हो संस्कार में परिणत होना

चाहिये। हम सभी लोग आधुनिक समय के ऐसी अनेक जातियों के विषय में जानते हैं जिनमें इस तरह के बहुत से ज्ञान हैं, लेकिन वे जातियाँ असभ्य जाति के समान हैं, वे बाघ के समान खूंखार हैं, क्योंकि उनके ज्ञान संस्कारगत नहीं हुए हैं। सभ्यता की तरह ज्ञान भी है, जब तक वह भीतर को स्पर्श नहीं करता, भीतर की पशु-प्रकृति जागृत हो उठती है। इस तरह के कार्य संसार में होते रहे हैं। इसलिये इस विपत्ति से सावधान रहना होगा। सर्वसाधारण को प्रचलित भाषा में शिक्षा दो; उन्हें भाव दो, वे बहुत सी बातों को जान जायँगे। लेकिन इस बात का भी प्रयत्न करो कि उनका ज्ञान संस्कार में भी परिणत होता जाय। जब तक ऐसा न कर सकोगे; तब तक सर्वसाधारण की चिर-स्थायी उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। एक ऐसी जाति उठेगी जो संस्कृत भाषा सीखकर और सब जातियों से उन्नति हो जायगी और उनपर पहले की तरह प्रभुत्व करेगी। हे नीची जाति के लोगो, मैं आप लोगों से कहता हूँ कि तुम्हारी अवस्था के उन्नत करने का एक मात्र उपाय संस्कृत भाषा का सीखना है और ऊँची जातियों के विरुद्ध जो वादाविवाद चल रहा है, वह व्यर्थ है! उससे कोई फल नहीं निकल सकता। उससे कल्याण नहीं हो सकता। उससे अशान्ति की आग जल उठेगी और दुर्भाग्य से पहले ही से अनेक भागों में विभक्त यह जाति क्रमशः और भी कई भागों में बँट जायगी। जाति-भेद को उठा देने और साम्य भाव के लाने का एकमात्र उपाय ऊँची जातियों को शिक्षा

देना है। जिनके द्वारा उनमें तेज और गौरव की वृद्धि होगी। यदि आप लोग यह कर सकेंगे तो आप जो चाह रहे हैं, उसे पा जाँयगे।

इसके साथ मैं एक और प्रश्न पर विचार करना चाहता हूँ। इस प्रश्न का मद्रास से विशेष संबंध है। एक मत है कि दक्षिणात्य में आर्यावर्त के रहने वाले आर्यों से बिल्कुल पृथक द्राविड़ जातियों का निवास था, केवल दक्षिणात्य के ब्राह्मण ही आर्यावर्त निवासी ब्राह्मणों से उत्पन्न हैं, इसलिये दक्षिणात्य की अन्यान्य जातियाँ दक्षिण के ब्राह्मणों से बिल्कुल पृथक हैं। यहाँ पर

सारा भारत ही आर्यमय है

पुरातत्व के जानने वाले विद्वान लोग मुझे क्षमा करेंगे, मैं कहता हूँ कि यह बात बिल्कुल बेबुनियाद है। इसका एकमात्र प्रमाण यही है कि आर्यावर्त और दक्षिणात्य की भाषा में भेद है मैं तो और कोई भेद नहीं देख पाता। हम लोग यहाँ पर इतने आर्यावर्त के लोग विद्यमान हैं। मैं अपने युरोपियन भाइयों को आह्वान करता हूँ कि वे यहाँ पर एकत्रित आर्यावर्त और दक्षिणात्य के लोगों को अलग अलग कर देवें। उनमें भेद कहाँ पर है। सिर्फ भाषामात्र का भेद है। उपरोक्त मत वाले कहते हैं कि दक्षिणी ब्राह्मण जब आर्यावर्त से यहाँ पर आये तो वे संस्कृत बोलते थे। यहाँ पर आकर द्राविड़ी भाषा बोलते बोलते संस्कृत भाषा भूल गये। यदि ब्राह्मणों के सम्बन्ध में यह बात है तो और जातियों के

सम्बन्ध में वह बात क्यों नहीं हो सकती ? अन्यान्य जातियाँ भी आर्यवर्त की रहने वाली थीं। उन्होंने भी दक्षिण में आकर संस्कृत भूलकर द्रविड भाषाओं को सीख लिया, यह बात क्यों नहीं हो सकती ? जिस युक्ति के द्वारा आप दक्षिणात्य के रहने वाले ब्राह्मणेतर जातियों को अनार्य कह रहे हैं, मैं उसी युक्ति के द्वारा उन्हें आर्य प्रमाणित कर सकता हूँ। ये सब बेवकूफी की बातें हैं। इन सब बातों पर आप विश्वास न करें। यह हो सकता है कि एक द्राविड़ जाति थी उसका इस समय लोप हो गया है, जो बचे हैं, वे जङ्गलों में निवास करते हैं यह बहुत सम्भव है कि यह द्रविड़ भाषा भी संस्कृत के बदले में ग्रहण की गयी है, किन्तु सभी आर्य हैं, आर्यावर्त से दक्षिणात्य को आये हैं। सम्पूर्ण भारत आर्यमय है, यहां पर और कोई जाति नहीं है। फिर एक दूसरा मत है कि शूद्र लोग निश्चय ही अनार्य जाति हैं— वे आर्यों के दास हैं। पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि इतिहास में जो एक बार होता है, उसकी पुनरावृत्ति होती है। जिस कारण से अंग्रेज, पुर्तगीज, डच लोग बिचारे अफ्रीका के मूल जातियों को जीते जी पकड़ कर उनसे खूब काम लेते रहे हैं और उन्हें जान से मार भी देते रहे हैं, जिस कारण से इन जातियों से उत्पन्न वर्ण-संकर सन्तानों को क्रीतदास बना लिया जाता था और बहुत दिन तक उसी दशा में रखा जाता था, वैसे ही हजारों वर्षों पहले यहां भी होना संभव है। पुरातत्व के विद्वान स्वप्न में देख सकते हैं कि भारत काली काली आंख वाली

आदिम जातियों से पूर्ण था, गौर वर्ण वाले आर्य वहां पर वास करने लगे। वे कहां से उड़कर वहां पर आ गये, इस बात को ईश्वर ही जाने। किसी किसी के मत से मध्य तिब्बत से वे आये और कोई कोई कहते हैं कि मध्य एशिया से आये। बहुत से स्वदेश-हितैषी अंग्रेज ऐसे हैं जो यह समझते हैं कि सभी आर्य लोग पीले बाल वाले थे। कुछ ऐसे भी हैं जो अपनी पसन्द के अनुसार उन्हें काले बाल वाला भी ठहराते हैं। लेखक के बाल यदि काले हैं तो वे आर्यों को भी काले बाल वाला समझते हैं। इस समय इस बात को सिद्ध करने के लिए प्रयत्न हो रहा है कि आर्य लोग स्वीट्ज़रलैण्ड के झीलों के तट पर वास करते थे। अगर ऐसे विद्वान वहां पर इन सब मतामतों को लेकर डूब मरते तो मैं बहुत दुखित नहीं होता। आजकल कोई कोई कहते हैं कि वे उत्तरी ध्रुव के निवासी थे। आर्य लोग और उनके निवास-स्थान को लेकर क्यों मरा जाय? हम लोगों के शास्त्रों में इसके लिये कोई प्रमाण है या नहीं, यदि इसका अनुसंधान किया जाय तो पता चलेगा कि हम लोगों के शास्त्रों में इन मतों के समर्थन के लिये कोई वाक्य नहीं है। ऐसा कोई भी वाक्य नहीं जिससे आर्यों को भारत के बाहर किसी देश का निवासी समझा जा सके; और अफ़गानिस्तान प्राचीन भारत के अन्तर्गत था। शूद्र जाति के लोग सभी अनार्य हैं और वे बहुसंख्यक थे, यह सब कहना भी ठीक नहीं। उस समय कुछ थोड़े से उपनिवेश बसाने वाले आर्यों के लिये सैकड़ों हजारों अनार्यों के साथ

मुकाबला करना संभव नहीं था। वे पांच मिनट में ही आर्यों को पीस डाले होते।

जाति-भेद की एक मात्र ठीक ठीक मीमांसा महाभारत ही में पायी जाती है। महाभारत में लिखा है कि सत्य युग के आरंभ में केवल ब्राह्मण जाति थी। भिन्न भिन्न पेशे इख्तियार करके वे भिन्न भिन्न जातियों में बट गये। जाति-भेद समस्या की जितनी भी व्याख्यायें सुनने में आती हैं, उनमें यही एक सच्ची युक्तियुक्त व्याख्या है। आगामी सत्ययुग में फिर ब्राह्मणेतर सभी जातियाँ ब्राह्मणों के रूप में परिणत हो जाँयगी। इसलिये भारत की जाति-भेद समस्या की मीमांसा इस प्रकार है कि उच्च वर्ण वालों को हीन नहीं बनाया जा सकता, ब्राह्मणों का लोप नहीं करना होगा। भारत में ब्राह्मण ही मनुष्यत्व के चरम आदर्श हैं। शंकराचार्य ने अपने गीता भाष्य की भूमिका में इस भाव को बहुत सुन्दर रूप में स्पष्ट किया है। श्रीकृष्ण के अवतार का कारण बतलाते हुए उन्होंने कहा है कि श्रीकृष्ण ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिये अवतीर्ण हुए थे। यही उनके अवतार का महान उद्देश्य था। ऐसे ब्राह्मण, ब्रह्मज्ञपुरुष, इस आदर्श और सिद्ध पुरुष की आवश्यकता है, ब्रह्मज्ञ पुरुष के लोप हो जाने से काम नहीं चल सकता। आधुनिक जाति-प्रथा में चाहे जितनी भी बुराई हो, परन्तु यह कहना ही पड़ेगा कि और दूसरी जातियों

जाति-भेद समस्या की मीमांसा महाभारत में मौजूद है

की अपेक्षा इन्हीं में अधिकांश प्रकृत ब्राह्मणत्व-सम्पन्न व्यक्तियों का अभ्युदय हुआ है। यह सत्य है। अन्यान्य जातियों को इन्हें इस का गौरव देना होगा। हम भले ही उनमें दोष निकालें, पर साथ ही जितनी प्रशंसा के वे योग्य हैं, जितने गौरव के वे अधिकारी हैं, उसे स्वीकार ही करना होगा। 'प्रत्येक व्यक्ति को जो उचित है, दे दो' यह अंग्रेजी के एक प्रचलित वाक्य का भाव है। इसलिये हे भाइयो, भिन्न-भिन्न जातियों में विवाद की आवश्यकता नहीं है। उसका क्या फल होगा? उससे तो हम लोग और भी विभक्त हो जाँयगे, हम लोग और दुर्बल हो जाँयगे, अवनत हो जाँयगे। एकाधिकार के दिन चले गये। और यही इस भारत में अंग्रेजों के अधिकार का एक बड़ा अच्छा परिणाम हुआ है।

मुसलमान और अंग्रेज़ी शासन का सुफल

यही क्यों, मुसलमानों के अधिकार ने भी एकाधिकार को नाश करने में बड़ा काम किया है। मुसलमानी राज्य बिल्कुल बुरा था, यह भी नहीं कहा जा सकता। संसार की कोई भी वस्तु बिल्कुल ख़राब नहीं है और न कोई चीज़ बिल्कुल अच्छी ही है। भारत पर मुसलमानों के शासन का फल यह हुआ कि बहुत से दरिद्र पद-दलित लोगों का उद्धार हो गया। इसी से हम में से पंचमांश लोग मुसलमान हो गये हैं। केवल यह तलवार के बल से नहीं हुआ है। इतने लोग केवल बन्दूक तलवार के बल से मुसलमान हो गये थे, यह

कहना बिल्कुल पागलपन है। और अगर आप लोग सावधान न होंगे तो मद्रास प्रान्त के पंचमांश ही क्यों, आधे लोग ईसाई हो जाँयगे। मालावार में मैंने जो कुछ देखा है, उससे बढ़कर संसार में और ज्यादा बेवकूफी की बात क्या हो सकती है। बेचारी पारिया जाति को उच्च वर्ण वालों के साथ एक रास्ते से जाने नहीं दिया जाता, लेकिन ज्योंही वे ईसाई होकर आन्द्रू पिन्ट्रू अंग्रेजी नाम रख लेते हैं या मुसलमान होकर मुसलमानी नाम रख लेते हैं, तब वे बाप हो जाते हैं, उन्हें कोई रोक-टोक नहीं रहती, इस तरह के देशाचार देखकर इसे छोड़ कर और क्या कहा जा सकता है कि मालावार के लोग पागल हैं। उनके घर पागलखाना हैं और जब तक वे लोग अपनी प्रथा और आचार में संशोधन नहीं करते तब तक वे सभी के घृणा के पात्र रहेंगे। इस तरह की दूषित और राक्षसी प्रथा अब भी बे रोक-टोक के बनी हुई है, यह क्या उनके लिये लज्जा की बात नहीं है? अपने लड़के भूख के मारे मर रहे हैं, वे दूसरे के बनते जा रहे हैं, क्या यह लज्जा की बात नहीं है?

ऊँची जाति वालों को नीचा करने से भी यह समस्या हल नहीं हो सकती। नीची जातियों को उन्नत करने से ही यह समस्या हल होगी। यद्यपि बहुत से लोग जिन्हें शास्त्र-ज्ञान और प्राचीन पुरुषों के महान् उद्देश्यों को समझने की शक्ति नहीं, कुछ दूसरा ही कहते हैं, तो भी यही हम लोगों के शास्त्रों में बतलाई हुई कार्य-प्रणाली है। वे यह नहीं समझ सकते;

प्राचीन शास्त्रकारों की जातीयभेद की समस्या —नीच जाति को क्रमशः उन्नत करना

किन्तु जिन्हें दिमाग है, जिन्हें धारणा शक्ति है, वे भी प्राचीन काल के लोगों की कार्य-प्रणाली और बुद्धि को समझ सकते हैं। वे दूर रहते हुए अनन्त युग से जातीय जीवन का जो अपूर्व प्रवाह चल रहा है, उनकी आदि से लेकर अन्त तक की आलोचना करते हैं। वे प्राचीन और आधुनिक शास्त्र में प्राचीन ऋषियों की कार्य-प्रणाली को देखते हैं।

वह कार्य-प्रणाली क्या है ? एक ओर ब्राह्मण, दूसरी ओर चाण्डाल और चाण्डाल को क्रमशः ब्राह्मणत्व, प्रदान करना ही उनकी कार्य-प्रणाली थी। उनके बाद के जो ग्रन्थ हैं उनमें भी देखने में आता है कि नीची जातियों को क्रमशः उच्चाधिकार दिया गया है। ऐसे भी शास्त्र हैं जिनमें इस प्रकार के कठोर वाक्य पाये जाते हैं कि यदि शूद्र वेद-श्रवण करें तो उनके कान में गर्म गर्म शीशा डाल देना चाहिये, अगर वे वेद को स्मरण रखें तो उन्हें काट डाला जाय। अगर वे ब्राह्मण को 'हे ब्राह्मण' कह कर पुकारें तो उनकी जीभ छेद दी जाय। यह प्राचीन राक्षसी बर्बरता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। और यह भी कहना अनुचित न होगा कि इसमें व्यवस्थापकों को कोई दोष नहीं दिया जा सकता, उन्होंने समाज की कुछ प्रथा को लिखा भर है। उन प्राचीन पुरुषों के भीतर कभी कभी आसु-रिक प्रकृति के लोग उत्पन्न हो गये थे। सभी युग में सब स्थान

पर थोड़े बहुत आसुरिक प्रकृति के लोग होते ही रहे हैं। बाद की स्मृतियों को देखने से पता चलता है कि उनमें शूद्रों के प्रति कठोरता का व्यवहार कुछ कम हो गया है; 'शूद्रों के प्रति निष्ठुर व्यवहार की आवश्यकता नहीं, लेकिन उन्हें वेदादि की शिक्षा नहीं देनी चाहिये।' क्रमशः इसके बाद वाली स्मृतियों में, जो आज कल के युग के लिये बनाई गई हैं, यह लिखा हुआ है कि यदि शूद्र लोग ब्राह्मणों का आचरण करें तो वे बहुत अच्छा करते हैं, उन्हें इसके लिये उत्साहित भी करना चाहिये। इस प्रकार ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते हैं, त्यों त्यों शूद्रों को अधिकाधिक अधिकार मिलते जाते हैं। इस तरह से मूल कार्य-प्रणाली भिन्न भिन्न समय पर भिन्न भिन्न भावों में किस तरह से परिणत हुई अथवा विभिन्न शास्त्रों का अनुसंधान करके उनके विस्तृत विवरण का किस तरह पता चलेगा, इसे बतलाने को मुझे मौका नहीं हैं, किन्तु इस विषय पर सीधे-सादे ढङ्ग पर विचार करके देखने पर पता चलता है कि सभी जातियों को धीरे २ उठना होगा। अब भी जो हज़ारों जातियाँ हैं, उनमें से बहुत सी जातियाँ ब्राह्मण होगई हैं। क्योंकि अगर कोई जाति अपने को ब्राह्मण कहने लगे तो दूसरा कर ही क्या सकता है? जाति-भेद चाहे जितना भी कठोर हो, यह इसी तरह से बना है। मान लीजिये, कई जातियां हैं, उनमें से हर एक जाति में दस दस हज़ार व्यक्ति

जाति-भेद की कठोरता रहते हुए भी विभिन्न जातियों की क्रमोन्नति

हैं। अगर वे सब मिलकर अपने को ब्राह्मण कहने लगें तो कोई उन्हें रोक नहीं सकता। मैंने स्वयं अपने जीवन में यह देखा है। कई जातियां शक्तिशाली हो जाती हैं और जब वे एक मत होती हैं तो उन्हें कौन रोक सकता है? इसका कारण यह है कि प्रत्येक जाति के साथ दूसरी जातियों का कोई सम्पर्क नहीं है। एक जाति दूसरी जाति के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करती—इतना ही नहीं, एक जाति की उपशाखायें भी एक दूसरे के कार्य में बाधा नहीं डालती।

शंकराचार्य आदि बड़े बड़े आचार्य जाति का सङ्गठन करने वाले थे। उन्होंने जो जो अद्भुत कार्य किये हैं, उन्हें मैं आप लोगों से नहीं कह सकता और मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उससे आप लोगों में से कोई कोई नाराज़ भी हो सकते हैं। लेकिन मैंने भ्रमण द्वारा और अनुभव से इसका

शंकराचार्य आदि आचार्य नयी जाति के स्रष्टा थे

समाधान पाया है और मैंने इस गवेषणा का अद्भुत फल प्राप्त किया है। समय समय पर वे झुण्ड के झुण्ड आदमियों को क्षत्रिय बना डालते थे, झुण्ड के झुण्ड आदमियों को ब्राह्मण बना डालते थे। वे सभी ऋषि मुनि थे, हम सब लोगों को उनके कार्यों को बड़ी श्रद्धा भक्ति की दृष्टि से देखना चाहिये। आप लोगों को ऋषि मुनि होना पड़ेगा। यही सफलता होने का गूढ़ उपाय है। थोड़ा बहुत सब लोगों

कार्य करने का उपाय है

ऋषित्व की प्राप्ति

को ऋषित्व सम्पन्न होना पड़ेगा। ऋषि शब्द का अर्थ क्या है? शुद्ध भाव वाले

व्यक्ति। पहले शुद्ध चित्त वाले बनो, तुम में शक्ति आ जायगी। केवल ऋषि कहने भर से काम न चलेगा। लेकिन जभी तुम यथार्थ ऋषित्व प्राप्त करोगे, तो तुम देखोगे कि कोई भी तुम्हारी बात सुने बिना न रहेगा। तुम्हारे भीतर से एक आश्चर्यजनक वस्तु आकर दूसरे के मन पर प्रभाव डालेगी। इससे वे बाध्य होकर तुम्हारे अधीन हो जायँगे और बाध्य हो कर तुम्हारी बात सुनेंगे। इतना ही नहीं वे अपनी इच्छा के विरुद्ध ही तुम्हारे संकल्पित कार्य-सिद्धि में सहायक होंगे। यही ऋषित्व है।

मैंने जो कुछ कहा, उससे कार्य-प्रणाली का कुछ विशेष वर्णन नहीं हुआ। वंश-परम्परा के अनुसार पूर्वोक्त भाव से कार्य करते करते विशेष विशेष कार्य करने के ढँग आप से आप मालूम होते जायँगे। वाद-विवाद करने की कुछ जरूरत नहीं, इसी बात को दिखलाने के लिये मैंने यहां पर दो एक बातों का आभास दिया है, मेरे अधिकांश दुख का कारण यह है कि आज कल भिन्न भिन्न जातियों में आपस में खूब वाद-विवाद हो रहा है। यह बन्द हो जाना चाहिये। दोनों पक्ष को इससे कुछ लाभ न होगा। एकाधिकार के दिन चले गये। प्रत्येक अच्छी जाति का कर्त्तव्य है कि अपनी समाधि स्वयं खोदे, और जितनी जल्दी वे कार्य करेंगी, उतना ही उनका कल्याण होगा। और जितना ही इसमें विलम्ब होगा, उतना ही उनके लिये बुरा होगा और उनकी मृत्यु भी उतनी

ब्राह्मण जाति का कर्तव्य है सर्वसाधारण को धर्म और विद्या का दान देना

ही भयानक होगी। इस कारण से ब्राह्मण जाति का कर्तव्य है—कि वह भारत की दूसरी सभी जातियों के उद्धार की चेष्टा करे। यदि वे लोग ऐसा करते हैं और जितने दिन तक करते हैं, उतने ही दिन तक वे लोग ब्राह्मण हैं, लेकिन अगर वे केवल रुपये के लालच में इधर उधर घूमते रहेंगे तो उन्हें ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। और आप लोगों का भी कर्तव्य है कि आप लोग असली ब्राह्मणों की सहायता करें। इसी से स्वर्ग की प्राप्ति होगी। लेकिन अपात्र को दान देने से उसका फल स्वर्ग की प्राप्ति न होकर उसका उल्टा ही होगा, हमारे शास्त्रों ने यही कहा है। इस विषय में आप लोगों को सावधान रहना होगा। वे ही यथार्थ ब्राह्मण हैं जो सांसारिक कोई कार्य कर्म नहीं करते। सांसारिक कर्म दूसरो जातियों के लिये है, ब्राह्मणों के लिये नहीं। मैं ब्राह्मणों को ललकार करके कहता हूँ कि वे जो कुछ जानते हैं, उसे सिखा कर, सैकड़ों शताब्दियों से जो ज्ञान और अनुभव उन्होंने प्राप्त किया है, उसे दान देकर भारतवासियों को उन्नत करने के लिये उन्हें प्राणप्रण से चेष्टा करनी होगी। भारतीय ब्राह्मणों का कर्तव्य है कि वे इसको स्मरण रखें कि प्रकृत ब्राह्मणत्व क्या है। मनु ने कहा है:—

ब्राह्मणो जायमानोहि पृथिव्यमधिजायते।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोषस्य गुप्तये। १। ९९

अर्थात् ब्राह्मणों को जो इतना सम्मान और विशेष अधिकार दिये गये हैं, उसका कारण यह है कि उनके पास धर्म का भंडार है। उन्हें इस भंडार को खोलकर उसमें के संचित रत्नों के समूह संसार भर में वितरण करना होगा। यह सच बात है कि भारतीय अन्यान्य जातियों में ब्राह्मणों ने ही पहले पहल धर्म तत्व का प्रकाश किया और उन्होंने सब से पहले जीवन की गूढ़तम समस्याओं के रहस्य को प्राप्त करने के लिये अपना सब कुछ त्याग दिया था। ब्राह्मणों ने अन्यान्य जातियों से अधिक उन्नति की थी, इसमें उनका अपराध ही क्या था?

ब्राह्मणेतर जातियों का कर्तव्य

दूसरी जातियों ने क्यों नहीं ज्ञान प्राप्त किया, क्यों नहीं उनकी तरह कर्म किये? उन्होंने पहले आलसी हो चुपचाप बैठ कर कछुए और खरहे की दौड़ की बाजी का अनुभव क्यों नहीं किया?

तो भी बात यह है कि दूसरों से आगे बढ़ जाना और सुविधा पाना एक बात है, और बुरे व्यवहारों के लिये उन्हें पकड़ रखना दूसरी बात है। जब शक्ति का बुरे उद्देश्य से व्यवहार होता है तो वह आसुरिक भाव धारण कर लेती है, अच्छे उद्देश्य से ही क्षमता का व्यवहार करना होगा। इसलिये सैकड़ों हज़ारों शताब्दियों से संचित शिक्षा और संस्कार के जो इतने दिनों से रक्षक

विदेशी आक्रमण का कारण था ब्राह्मणेतर जातियों को धर्म और विद्या से वंचित रखना

हैं, उन्हें सर्वसाधारण को देना होगा। और उन्होंने सर्वसाधारण को इतने दिन तक नहीं दिया, इसी कारण से ही मुसलमानों का आक्रमण संभव हुआ था। उन्होंने सर्वसाधारण में इस भंडार को नहीं बाँटा, इसी से हज़ार वर्ष से जिस किसी के मन में आया, उसी ने भारत में आकर हम लोगों को कुचला। इसी से हम लोगों की इतनी अवनति हुई है।

हम लोगों का सबसे पहले कर्तव्य यह है कि हमारे पूर्व पुरुषों ने भंडार में जो अपूर्व रत्न संचित कर छिपा रखे हैं, उन्हें निकाल कर प्रत्येक को देवें। ब्राह्मणों को ही यह कार्य सब से पहले करना होगा। बङ्गाल में एक पुराना कुसंस्कार है कि जो साँप काटे, वह अपना विष यदि स्वयं खींच ले तो वह रोगी बच जायगा। इसलिये ब्राह्मणों को अपना विष खींचना पड़ेगा।

ब्राह्मणेतर जातियों से मैं कहता हूँ कि भाई, प्रतीक्षा करो, घबड़ाओ नहीं। मौक़ा पाते ही ब्राह्मणों पर आक्रमण न करो। क्योंकि मुझे आप लोगों को दिखलाना है कि आप लोग अपने दोष से ही कष्ट पा रहे हैं। आप लोगों को आध्यात्मिकता उपार्जित करने और संस्कृत सीखने से किसने मना किया था? इतने दिन आप लोग क्या करते थे? आप लोग इतने दिन तक उदासीन क्यों कर थे? दूसरे लोग आप से अधिक मेधावी, अधिक वीर्यवान, अधिक साहसी और अधिक क्रियाशील थे,

ब्राह्मणेतर जातियों की उन्नति होने के लिये संस्कृत का पढ़ना आवश्यक है।

इससे आप नाराजी क्यों दिखला रहे हैं ? समाचार-पत्रों में इन व्यर्थ के वादप्रतिवाद में पड़ कर घर ही में फूट न डालो, बल्कि अपनी सारी शक्ति लगा कर उस शिक्षा को प्राप्त करो जिसके बल पर ब्राह्मण इतने गौरव के अधिकारी रहे हैं, तभी आपका उद्देश्य सिद्ध होगा। आप संस्कृत भाषा के पंडित क्यों नहीं होते ? आप भारत की सारी जातियों में संस्कृत की शिक्षा फैलाने के लिये लाखों रुपये खर्च क्यों नहीं करते ? मैं आप लोगों से यही पूछता हूँ। आप जभी यह सब करेंगे, तभी आप लोग ब्राह्मणों के समान हो जायँगे। भारत पर अधिकार पाने का यही रहस्य है।

संस्कृत भाषा का पंडित होने से ही भारत में सम्मान पा सकते हो। संस्कृत भाषा का ज्ञान होने से कोई आपके विरुद्ध बोलने का साहस न करेगा। यही एक मात्र रहस्य है, इसी मार्ग का अवलम्बन करो। अद्वैतवाद की प्राचीन उपमा लेकर अगर कहा जाय तो यह कहा जा सकता है कि सारा संसार अपनी माया में अपने आप ही मुग्ध हो रहा है। संकल्प ही संसार में अमोघ शक्ति है। दृढ़ इच्छा-शक्ति वाले

मानसिक बल से ही सब कुछ होता है।

पुरुषों के शरीर से मानो एक प्रकार का तेज निकला करता है, और उनका मन जिस अवस्था में रहता है, वैसा ही वे दूसरे के मन को भी बना देते हैं। इस तरह की दृढ़ इच्छा-शक्ति वाले पुरुष कभी कभी उत्पन्न होते हैं। और जब एक शक्तिशाली पुरुष की शक्ति से बहुत लोगों के भीतर वह एक ही प्रकार का भाव उत्पन्न होता

है, तभी हम लोग शक्तिशाली होते हैं। एक प्रत्यक्ष उदाहरण देखिये, ४ करोड़ अंग्रेज आप ३० करोड़ भारतवासियों पर किस तरह शासन कर रहे हैं? संघ ही शक्ति का मूल है, यह कहने पर शायद आप यह कहें कि यह तो जड़ शक्ति के द्वारा ही सिद्ध हो सकता है, इसलिये आध्यात्मिक शक्ति की क्या आवश्यकता है? परन्तु यह आध्यात्मिक शक्ति ही की तो आवश्यकता है। ये ४ करोड़ अंग्रेज अपनी सारी इच्छा-शक्ति को एकत्र किये हुए हैं उसी के द्वारा ही उनमें असीम शक्ति आती है और आप ३० करोड़ होते हुए भी अलग अलग हैं। इसलिये भारत के भविष्य को उज्ज्वल करने का मूल रहस्य संघ, शक्ति-संग्रह विभिन्न इच्छा-शक्तियों का एकत्र करना है। मेरे मानसिक नेत्रों के सन्मुख ऋग्वेद संहिता का अपूर्व वेद मंत्र है।

सब का एक अंतःकरण होने से ही जातीय उन्नति हो सकती है

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे इत्यादि। १०। १९१। २

आप सब लोग एक अन्तःकरण के हो जाइये, क्योंकि प्राचीन काल में देवता लोग एक मन होने से ही अपना भाग प्राप्त करने में समर्थ हुए थे। देवता एक चित्त होने से ही मनुष्यों के पूज्य पात्र हुए थे। समाज का गठन ही इसका रहस्य है। और आप आर्य, द्रविड़, ब्राह्मण, अब्राह्मण आदि तुच्छ विषयों को लेकर विवाद में फँसे रहेंगे। उतना ही आप भावी

भारत के उपयुक्त शक्ति-संग्रह से बहुत दूर रहेंगे। क्योंकि भारत का भविष्य इसी एक बात पर निर्भर करता है। यही इच्छा-शक्तियों का सम्मिलन है, एक केन्द्रीकरण है; यही रहस्य है। प्रत्येक चीनी का मन एक दूसरे से भिन्न है, और मुट्ठी भर जापानी एक चित्त हैं, इसका क्या परिणाम हुआ है, यह हम और आप देख ही रहे हैं। संसार के इतिहास में हमेशा से यही होता आया है। आप देखेंगे कि छोटी छोटी जातियां चिरकाल से बड़ी बड़ी जातियों पर प्रभुत्व प्राप्त करती रही हैं, और यही स्वाभाविक भी है, क्योंकि छोटी जाति के विभिन्न भावों का एकीकरण करना अत्यन्त आसान है और इसी से उसकी सहज ही उन्नति होती है। और जिस जाति में लोगों की संख्या जितनी ही ज्यादा होती है, उनका एक में मिल कर काम करना उतना ही कठिन है। वे मानो असंगठित अनियन्त्रित लोगों का समूह होती हैं, वे कभी मिल नहीं सकतीं। जो हो, हम लोगों को सारा झगड़ा बखेड़ा छोड़ना पड़ेगा।

हम लोगों के भीतर एक और दोष है। भद्र महिलाओ, आप लोग मुझे क्षमा करें, हम लोग सैकड़ों शताब्दियों से गुलामी करते करते स्त्री जैसे हो गये हैं। आप लोग इस देश या दूसरे किसी देश को जाइये, आप देखेंगे कि यदि एक स्थान में तीन स्त्रियाँ ५ मिनट के लिये भी इकट्ठी होंगी, तो झगड़ा कर बैठेंगी। पाश्चात्य देशों में बड़ी

हम लोग स्त्रियों की तरह ईर्ष्यालु हो गये हैं

बड़ी सभायें करके वे स्त्रियों की समता और अधिकारों की घोषणा से आकाश को क्यों गुँजा देती हैं, इसके दो दिन बीतते न बीतते आपस में झगड़ा कर बैठती हैं, तब कोई पुरुष आकर प्रभुत्व जमा लेता है। सभी जातियों में आप ऐसा ही देखेंगे। स्त्रियों को शासन में रखने के लिये अब भी पुरुषों की आवश्यकता है। हम लोग भी इसी तरह स्त्रियों के समान हो गये हैं अगर कोई स्त्री आकर उनपर नेतृत्व करने लगती है, तो सब मिलकर उसकी कड़ी से कड़ी समालोचना करने लगती हैं। उसे बोलने भी नहीं देती, जबर्दस्ती बैठा देती हैं। लेकिन यदि कोई पुरुष आकर उनके प्रति कुछ कठोर व्यवहार करे, बीच बीच में बुरा भला भी कहता जाय तो उन्हें अच्छा लगेगा, क्योंकि वे लोग इस प्रकार के व्यवहारों की अभ्यस्त हो गई हैं। सारा संसार ही जादूगरों और वशीकरन मंत्र जानने वालों से भरा हुआ है—शक्तिशाली पुरुष सदा इस प्रकार दूसरों को वश में करते हैं। हम लोगों के सम्बन्ध में भी यही हुआ है। अगर आप के देश का कोई मनुष्य बढ़ना चाहता है तो आप सब लोग मिलकर उसे दबाते हैं, लेकिन एक विदेशी आकर अगर लाठी भी मारे तो उसे अनायास ही सहने के लिये प्रस्तुत होते हैं। आप लोग इसी के अभ्यस्त हो गये हैं। इसी दासता का तिलक सिर पर लगा कर आप लोग बड़े बड़े नेता भी बनना चाहते हैं? अस्तु, आप लोग इस दोष को छोड़ दीजिये।

पिछले पचास वर्षों से यह मातृ भूमि मानों आप की आरा-

ध्यदेवी हुई है, और दूसरे देवताओं को कई वर्ष तक भुला देने से भी कोई हानि नहीं। और दूसरे देवता लोग सो रहे हैं, यही एक देवता जागृत हैं, सर्वत्र उनके हाथ, उनके कान फैले हैं, वह सर्वत्र व्याप्त है। आप क्यों व्यर्थ के देवताओं की खोज में परेशान हो रहे हैं, अपने सामने, अपने चारों तरफ जिस देवता को देख रहे हैं, उसी विराट देवता की क्यों नहीं पूजा करते! जब आप इस देवता की उपासना करने में समर्थ होंगे तो और दूसरे देवताओं की पूजा करने की आप में सामर्थ्य आ जायगी। आप पैदल रास्ता तै करना नहीं चाहते, हनुमान जी की तरह एक दम समुद्र लाँघ जाना चाहते हैं। ऐसा कभी नहीं हो सकता। सभी योगी होना चाहते हैं, सभी ध्यान करने के लिये आगे बढ़ रहे हैं। इससे कुछ न होगा। दिन भर दुनियादारी में फँसे रह कर शाम को थोड़ी देर तक नाक दाबने से क्या होगा? यह उतना सरल काम नहीं है। तीन बार नाक दाबने से आप ऋषि नहीं बन जाँयगें। क्या यह तमाशा लड़कों का खेलवाड़ नहीं है? सब से आवश्यक चित्त की शुद्धि है। किस तरह से यह चित्त की शुद्धि होगी? पहले पूजा—विराट की पूजा आपके सामने है। जो आपके चारों तरफ़ है, उसकी पूजा करनी होगी। सेवा नहीं। सेवा कहने से मेरे भाव को अच्छी तरह आप नहीं समझ सकते। पूजा शब्द ही से इस भाव को प्रकट किया जा सकता

जननी जन्मभूमि रूप विराट देवता की उपासना करो।

है। ये मनुष्य ये पशु—ये ही आपके ईश्वर हैं, और आपके देशवासी ही आपके प्रथम उपास्यदेव हैं। आप लोगों को आपस की द्वेषहिंसा छोड़कर और आपस में विवाद न करते हुए इन स्वदेशी देवताओं की पूजा करनी होगी। आप लोग अपने घोर कुकर्मों के फल स्वरूप कष्ट पा रहे हैं, तो भी आप की आँखें नहीं खुलती हैं।

यह विषय बड़ा भारी है, कहाँ तक चल कर ठहरूँगा, कह नहीं सकता। अस्तु। मद्रास में मैं जिस तरह से काम करना चाहता हूँ, उसे दो चार वाक्यों में बतला करके मैं अपनी वक्तृता को समाप्त करूँगा। हम लोगों को सारी जाति भर को आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा का भार ग्रहण करना होगा। आप लोगों को इस विषय की आलोचना, कल्पना तथा चिन्ता करनी होगी, तथा अंत में उसे कार्य रूप में परिणत भी करना होगा। जितने दिन तक आप ऐसा न करेंगे, तब तक आप की जाति का उद्धार न होगा, आप लोग इस समय जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, उसमें निस्संदेह बहुतेरे गुण हैं लेकिन उसमें बहुत सी बुराइयाँ भी हैं। ये बुराइयाँ इतनी ज्यादा हैं कि गुण उनमें छिप सा जाता है। पहले इस शिक्षा से मनुष्य नहीं बनता, यह शिक्षा बिल्कुल अधूरी है। इस तरह की शिक्षा अथवा दूसरी किसी तरह की शिक्षा से सब कुछ नष्ट हो जाय तो वह मृत्यु से भी भयानक है। स्कूल में जाते ही लड़का यह सीखता है कि तुम्हारा बाप मूर्ख है, इसके बाद सीखता है कि तुम्हारा दादा

शिक्षा का अर्थ नाश नहीं है बल्कि निर्माण है

यदि किसी सम्प्रदाय को ओंकार की उपासना में आपत्ति हो तो उसे हिन्दू कहलाने का अधिकार नहीं है। चाहे जिस किसी भी सम्प्रदाय का हो, सभी हिन्दू हैं। अपने अपने सम्प्रदाय के भाव के अनुसार ही सभी इस ओंकार की व्याख्या कर सकते हैं लेकिन सर्वसाधारण के लिये उपयोगी एक मन्दिर की आवश्यकता है। दूसरी जगहों में आपके भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के अपने अपने मन्दिर होवें लेकिन यहाँ पर आप लोग दूसरे सम्प्रदाय वालों से झगड़ा न करें। यहाँ हमारे भिन्न भिन्न सम्प्रदायों की साधारण बातें सिखलाई जाँय और प्रत्येक सम्प्रदाय को इस स्थान पर आकर अपने मत की शिक्षा देने का पूरा अधिकार रहेगा। हाँ, एक बात की मनाही रहेगी। अगर किसी के साथ आपका मत भेद हो तो उससे झगड़ा न करना होगा। तुम्हें जो कुछ कहना हो कह जाओ, सब लोग उसे सुनना चाहेंगे। लेकिन और दूसरे लोगों के सम्बन्ध में तुम्हारे क्या मत हैं, इसे सुनने के लिये दुनिया को फुर्सत नहीं है। वह तुम्हारे मन के भीतर ही रहे।

इस मन्दिर के साथ साथ शिक्षकों और प्रचारकों का गठन करने के लिये एक विद्यालय रहे। इससे जो आचार्य बन कर निकलें, वे सर्वसाधारण को धर्म और अपरा विद्या की शिक्षा देंगे। मैं इस समय जिस तरह दरवाजे दरवाजे धर्म का प्रचार करते फिरता हूँ उन्हें दूसरी तरह धर्म और विद्या दोनों का प्रचार करना होगा। यह बात आसानी से हो

उक्त मन्दिर के साथ साथ आचार्यों का विद्यालय स्थापित करना होगा।

सकती है। इन आचार्यों और धर्म-प्रचारकों के प्रयत्न से ज्यों ज्यों कार्य बढ़ता जायगा, त्यों त्यों आचार्यों और प्रचारकों की संख्या भी बढ़ती जायेगी। धीरे धीरे और और स्थानों पर इस तरह के मन्दिर स्थापित होते जाँयगे; यहाँ तक कि सारे संसार भर में वे फैल जाँयगे। यही मेरी कार्य-प्रणाली है।

देखने में तो यह बड़ा भारी कार्य जान पड़ता है, परन्तु करने में उतना कठिन न होगा। आप कह सकते हैं कि रुपया पैसा कहाँ से आयगा, रुपये की क्या आवश्यकता है, रुपये का क्या होगा।

मनुष्य चाहिये

पिछले बारह वर्षों से मुझे यह ठिकाना नहीं रहता था कि कल क्या खाऊँगा, लेकिन रुपये पैसे आदि जिन चीजों की मुझे जब आवश्यकता प्रतीत होती थी, वह सब मुझे मिल जाती थी, क्यों कि धन मेरा दास है, मैं धन का दास नहीं हूँ। मैं कहता हूँ धन निश्चय ही मिलेगा। आप पूछ सकते हैं, लोग कहाँ से आयेंगे? हमारी क्या दशा हो गई है, यह आप लोगों से पहले ही कह चुका हूँ।

विश्वास से ही शक्ति आयेगी

हे मद्रासी नवयुवको! मेरी आशा तुम्हीं पर लगी है। तुम लोग क्या सारी जाति की पुकार पर ध्यान न दोगे? तुम लोग अगर विश्वास करके मेरी बात को मानो तो मैं तुम लोगों से कहता

हूँ कि तुम में से प्रत्येक का भविष्य बड़ा गौरव पूर्ण है। अपने ऊपर पक्का विश्वास रखो, जैसा कि मुझे लड़कपन में था। मैं उसी विश्वास के बल पर ये सारे कार्य सिद्ध कर सका हूँ। तुम में से प्रत्येक को अपने में यह विश्वास जमाना चाहिये कि हम सब लोगों में अनन्त शक्ति विराजमान है। तुम सब लोग भारत को पुनर्जन्म प्रदान कर सकते हो। हाँ, हम संसार के सब देशों को जाँयगे और आगामी दस वर्षों में हमारा भाव उस भाव का एक अंश हो जायगा जिसके सहयोग से संसार की प्रत्येक जाति गठित होती है। हम लोगों को भारत के भीतर या बाहर के प्रत्येक जाति के जीवन के बीच प्रवेश करना होगा और इस अवस्था को लाने के लिये हम लोगों को उठ कर जुट जाना पड़ेगा।

इस काम के लिये मैं कुछ युवकों को चाहता हूँ। वेद कहते हैं 'आशिष्ठो बलिष्ठो द्रढिष्ठो मेधावी' तैति० उप० २। ८। युवक गण ही ईश्वरत्व प्राप्त करेंगे। यही समय तुम्हें अपने भावी जीवन की गति को स्थिर करने का है। जब तक जवानी का तेज रहे तब तक तुम्हें दम न लेना चाहिये। कार्य में लगो। यही इसके लिये समय है। क्यों कि नया खिला हुआ ताजा फूल ही परमात्मा के चरणों में अर्पण करने योग्य होता है। वह इसे ग्रहण करते हैं। तब उठो, वाद विवाद, तर्क वितर्क करने से भी बड़ा काम पड़ा हुआ है। आयु थोड़ी है, इसलिये अपनी जाति की भलाई, सारी मनुष्य जाति के कल्याण के लिये आत्म बलिदान करना ही

जीवन के सर्वश्रेष्ठ कर्म हैं। इस जीवन में धरा ही क्या है? तुम लोग हिन्दू हो और तुम लोगों की मज्जा मज्जा में यह विश्वास बैठा है कि देह के नाश हो जाने से ही जीवन का नाश नहीं होता। समय समय पर मद्रासी नवयुवक मुझसे नास्तिकता की बातें कहते हैं। मुझे विश्वास नहीं होता कि हिन्दू कभी नास्तिक हो सकते हैं। पाश्चात्य ग्रन्थों को पढ़कर वह भले ही यह समझलें कि हम जड़वादी हैं। लेकिन यह दो दिन के लिये ही है, यह भाव तुम्हारी मज्जा में नहीं है, उस पर तुम कभी विश्वास नहीं कर सकते, ऐसा करना तुम्हारे लिये बिल्कुल असम्भव है। इस तरह की कभी चेष्टा न करो। मैंने लड़कपन में इस तरह की चेष्टा की थी, लेकिन मैं इसमें सफल नहीं हुआ। यह तो होने ही को नहीं है। जीवन क्षणस्थायी है। लेकिन आत्मा अविनाशी और अनन्त है। इसलिये जब मृत्यु ही निश्चित है तो आओ। एक महान आदर्श लेकर उसमें सारा जीवन लगा दो। यही हम लोगों का आदर्श हो। और वही भगवान जिन्होंने शास्त्रों में स्वमुख से कहा है कि 'मैं अपने जनों के परित्राण के लिये बराबार पृथ्वी पर अवतार लेता हूँ' वही कृष्ण भगवान हम लोगों को आशीर्वाद देवें और हम लोगों के उद्देश्य की सिद्धि में सहायक होवें।

भारतीय महापुरुष

सनातन सत्य और युग धर्म

भारतीय महापुरुषों की चर्चा चलाते समय मेरे मन में उस प्राचीन काल की बात याद पड़ती है जिसका इतिहास कुछ पता नहीं बताता। हाँ, किम्बदन्तियाँ ही उस दूर अतीत काल के घनांधकार से रहस्य उद्घाटन की व्यर्थ चेष्टा करती हैं। भारत में असंख्य महापुरुष पैदा हुये हैं। वास्तव में हिन्दू जाति ने हज़ारों वर्षों से असंख्य महापुरुषों को उत्पन्न करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया है। इसलिये मैं उनमें से कुछ युग-प्रवर्तक आचार्यों की कथा और जो कुछ मैंने उनके चरित्र पर विचार करके समझा है, आप लोगों से बतलाऊँगा। पहले हम लोगों को अपने शास्त्रों के सम्बन्ध में कुछ जानना आवश्यक है। हम लोगों के शास्त्रों में दो तरह के सत्य का उपदेश दिया गया है, पहला सनातन सत्य, दूसरा सत्य पहले की तरह प्रामाणिक न होते हुये भी विशेष देशकाल पात्र से प्रयुज्य है। जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप और उनके परस्पर के सम्बन्ध का विषय वेदों में लिखा हुआ है। दूसरे प्रकार का सत्य स्मृतियों, जैसे मनु, याज्ञवल्क्य आदि संहिताओं तथा पुराणों और तन्त्रों में लिखा हुआ है। इनकी प्रामाणिकता श्रुतियों के

अधीन है, इसका कारण यह है कि यदि स्मृतियां वेदों की विरोधी भी हैं तो श्रुति को ही उस स्थान में मानना होगा। यही शास्त्रों का विधान है। तात्पर्य यह है कि श्रुति में जीवात्मा की नियति और उसका चरम लक्ष्य-विषयक मुख्य तत्वों का पूरा वर्णन है, सिर्फ गौण विषय जो उन्हीं का विस्तार मात्र है, उसे ही विशेष रूप से वर्णन करना स्मृतियों और पुराणों का कार्य है। साधारण रूप से उपदेश देने के लिये तो श्रुति ही पर्याप्त हैं। धार्मिक जीवन बिताने के सम्बन्ध में श्रुतियों में निर्दिष्ट उपदेश के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। न और कुछ जानना है। इस विषय में जो कुछ प्रयोजन है, सभी श्रुतियों में है, जोवात्मा के सिद्धि-लाभ के लिए जो जो उपदेश आवश्यक हैं, वे सभी श्रुतियों में बतलाये गये हैं। केवल विशेष विशेष अवस्था के विशेष विशेष विधान श्रुतियों में नहीं हैं। स्मृतियों ने विभिन्न समय के लिये विशेष विशेष व्यवस्थायें दी हैं। श्रुतियों की एक और विशेषता है। जिन महापुरुषों ने श्रुतियों में भिन्न भिन्न सत्यों का उल्लेख किया है (जिनमें पुरुषों की ही संख्या अधिक है, तो भी कई एक स्त्रियों का भी उल्लेख है) उनके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में, जैसे वे कब और कहां पैदा हुए आदि के सम्बन्ध में हम बहुत कम जानते हैं। किन्तु उनकी सर्वोत्कृष्ट चिन्ता उनका श्रेष्ठ आविष्कार (ही कहना ठीक होगा) हम लोगों के देश के धर्म-साहित्य रूप वेद में लिपि-बद्ध और सुरक्षित है। स्मृतियों में महापुरुषों की जीवनी और कार्य-

कलाप ही विशेष रूप से दिखलाई पड़ते हैं। स्मृतियों में ही हम लोग पहले अद्भुत, महा शक्तिशाली, मनोहर चरित्र, इशारे में ही सारे संसार का परिचालन करने वाले महापुरुषों का परिचय पाते हैं, उनके चरित्र इतने उन्नत हैं कि उसके सामने उनके उपदेश फीके जँचते हैं।

हम लोगों के धर्म की यह विशेषता—हम लोगों को अच्छी तरह से समझनी होगी कि हम लोगों के धर्म में जिस ईश्वर के सम्बन्ध में कहा गया है, वह निर्गुण और सगुण है। उसमें व्यक्तिगत सम्बन्ध-रहित अनन्त सनातन तत्वों के साथ साथ असंख्य व्यक्तियों अर्थात् अवतारों का वर्णन है। किन्तु श्रुति वा वेद ही हम लोगों के धर्म के मूल हैं, उनमें केवल सनातन तत्वों का उपदेश है। बड़े बड़े अवतारों, आचार्यों और महापुरुषों की सभी बातें स्मृतियों और पुराणों में लिखी हुई हैं। आप इसे भी ध्यानपूर्वक देखियेगा कि सिर्फ हमारे ही धर्म को छोड़ कर संसार के और सभी धर्म किसी विशेष धर्म-प्रवर्तक या धर्म-प्रवर्तकों के जीवन के साथ अच्छेद्य भाव से सम्बद्ध है, ईसाई धर्म ईसा के, इसलाम मज़हब मुहम्मद के, जैन धर्म जिनों के, बौद्ध धर्म बुद्ध के और अनान्य धर्म अनान्य व्यक्तियों के जीवन के ऊपर प्रतिष्ठित हैं। इसी से इन सभी धर्मों में इन महापुरुषों के जीवन को लेकर वाद-विवाद चलता रहता है, जो स्वाभाविक ही है। यदि कभी इन प्राचीन

हिन्दू धर्म और दूसरे धर्मों में भेद

महापुरुषों के अस्तित्व के सम्बन्ध में ऐतिहासिक प्रमाण कमजोर ठहरे तो उनकी धर्म रूपी अट्टालिका गिर कर चूर चूर हो जायगी। हम लोगों का धर्म व्यक्ति विशेष के जीवन पर प्रतिष्ठित न होकर सनातन तत्वों के ऊपर प्रतिष्ठित है, इस से हम लोग इस आफत से बचे हुये हैं। कोई महापुरुष, यहाँ तक कि अवतार भो यह नहीं कहते कि हम जो कहते हैं, उसे ही मानो। श्रीकृष्ण की बातों को भी हम तभी मानते हैं जब वे वेदों के अनुकूल हैं। श्रीकृष्ण की महत्ता इसी में है कि वेदों के जितने भर प्रचारक हुये हैं, उनमें वे ही श्रेष्ठ हैं। मैं यह मानता हूँ कि मनुष्य की पूर्णता के लिये, उसकी मुक्ति के लिये जो कुछ आवश्यक है, वेदों में कहा है। और कुछ नया आविष्कृत नहीं हो सकता। आप कभी सभी ज्ञानों के चरम लक्ष्यरूप पूर्ण एकत्व से अधिक अग्रसर नहीं हो सकते। वेद ने बहुत पहले ही इस पूर्ण एकत्व का आविष्कार किया, इससे आगे बढ़ना असम्भव है। जिस समय 'तत्वमसि' आविष्कृत हुआ, तभी आध्यात्मिक ज्ञान सम्पूर्ण हो गया। यह 'तत्वमसि' वेदों में ही है। अब रहा सिर्फ समय समय पर देश, काल, पात्र के अनुसार लोकशिक्षा, सो उसी के लिये समय समय पर महापुरुषों और आचार्यों का अभ्युदय हुआ है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण की वाणी में यह तत्व जिस प्रकार शुद्ध और स्पष्ट रूप से कहा हुआ है, वैसा कहीं पर भी नहीं कहा गया है।

'यदा यदाहि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं।' ४। ७

"जब जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युदय होता है, तब तब मैं अपने को स्पष्ट करता हूँ, अधर्म के नाश के लिये ही मैं समय समय पर आविर्भूत होता हूँ।" यही भारतीय धारणा है।

इससे क्या सिद्ध होता है? इससे यही सिद्ध होता है कि एक तरफ ये सनातन-तत्व समूह रहे हैं। ये स्वतः प्रमाण हैं वे किसी युक्ति के ऊपर निर्भर नहीं हैं। ऋषि लोगों (चाहे वे कितने ही बड़े क्यों न हों) या अवतारों (चाहे वे कितने महिमा पूर्ण क्यों न हों) के वाक्यों पर निर्भर करना तो दूर की बात

है। मैं यहाँ यह कह सकता हूँ कि

केवल हिन्दू धर्म ही अन्यान्य देशों से भारतीय विचारों में यह क्यों सार्वभौम धर्म है? विशेषता है, इसी से मैं वेदान्त को ही

एक मात्र सार्व भौम धर्म कहता हूँ।

वेदान्त ही संसार का एक मात्र सार्वभौम धर्म कहला सकता है। क्योंकि यह किसी व्यक्ति विशेष के मत को मानने की शिक्षा नहीं देता यह केवल सनातन तत्वों की ही शिक्षा देता है। किसी व्यक्ति विशेष के साथ आविच्छिन्न भाव से जड़ित धर्म को संसार के सभी मनुष्य नहीं ग्रहण कर सकते। अपने इसी देश में यह देखने में आता है कि यहाँ पर कितने महापुरुष हो चुके हैं। मैं एक छोटे से शहर में देखता हूँ कि उस शहर के लोग भिन्न भिन्न सैकड़ों लोगों को अपना आदर्श मानते हैं। इसलिये मुहम्मद, बुद्ध, वा ईसा वा इस तरह के

कोई भी एक व्यक्ति किस तरह सारे संसार के लिये एक मात्र आदर्श हो सकते हैं ? अथवा उस एक व्यक्ति के ही वाक्य में सारी नीति विद्या, आध्यात्मिक तत्व वा धार्मिक सत्य भरे हैं, यह कैसे माना जा सकता है ? वेदान्त धर्म में इस प्रकार किसी व्यक्ति विशेष के वाक्य को प्रमाण स्वीकार करना आवश्यक नहीं है। मानव स्वाभाविक प्रकृति ही इसका प्रमाण है। इसका नीति-तत्व मनुष्य जाति के सनातन आध्यात्मिक एकत्व रूपी बुनियाद पर स्थित है। यह एकत्व प्रयत्न द्वारा नहीं प्राप्त होता, यह तो पहले ही से प्राप्त है।

दूसरी ओर हमारे ऋषियों ने अत्यन्त प्राचीन काल से ही यह समझ रखा था कि संसार के अधिकांश पुरुष किसी न किसी व्यक्ति विशेष के ऊपर निर्भर रहे बिना नहीं रह सकते। किसी न किसी आकार में लोग एक व्यक्ति विशेष को ईश्वर के रूप में मान लेते हैं। जिस बुद्धदेव ने व्यक्ति विशेष ईश्वर के विरुद्ध प्रचार किया था, उनके मरने के पचास वर्ष बीतते न बीतते उनके शिष्यों ने उन्हें ईश्वर मान लिया। किन्तु व्यक्ति विशेष ईश्वर की आवश्यकता है। मैं जानता हूँ कि ईश्वर की व्यर्थ की कल्पना से (अधिकांश स्थानों में इस प्रकार काल्पनिक ईश्वर मनुष्यों की उपासना के अयोग्य हैं।) श्रेष्ठ जीवन्त ईश्वर इस पृथ्वी में समय समय पर हम लोगों के

दूसरी ओर शास्त्रकारों ने ऐतिहासिक आदर्शों की आवश्यकता को समझा था

बीच में आविर्भूत होकर वास करते रहते हैं। किसी काल्पनिक ईश्वर से, हम लोगों के कल्पना से बनी किसी वस्तु से, (ईश्वर के सम्बन्ध में हम लोग जितनी भी धारणायें कर सकते हैं उससे) वे अधिक पूजा के योग्य हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में हम आप चाहे जितनी भी धारणायें कर सकते हैं, उनकी अपेक्षा श्रीकृष्ण बहुत ऊँचे हैं। हम लोग अपने मन में जितने ऊँचे आदर्श को सोच समझ सकते हैं, उससे बुद्धदेव बहुत ऊँचे आदर्श हैं, जीते-जागते आदर्श हैं। इसीसे सब तरह काल्पनिक देवता को भी पदच्युत करके वे इतने दिनों से लोगों द्वारा पूजित हो रहे हैं। हमारे ऋषि लोग इसे जानते थे, इसीसे उन लोगों ने सभी भारतवासियों के लिये इन महापुरुषों—इन अवतारों की पूजा का मार्ग खोला। केवल यही नहीं, जो हम लोगों के सर्व-श्रेष्ठ अवतार हैं, उन्होंने कुछ कदम आगे बढ़ कर कहा है—

यद् यद् विभूतिमत् सत्वं श्री मदार्जितमेव वा
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽश सम्भवम्। १०। ४१

—गीता

अर्थात मनुष्यों में जो अद्भुत आध्यात्मिक शक्तियों का प्रकाश दिखलाई पड़े तो समझना कि मैं ही वर्तमान हूँ। मुझसे ही ये आध्यात्मिक शक्तियाँ प्रकाशित होती हैं।

इसके द्वारा हिन्दुओं के लिये सभी देशों के सभी अवतारों की उपासना करने का द्वार खोल दिया गया है। हिन्दू किसी भी देश के किसी साधु महात्मा की पूजा कर सकते हैं। हम कार्य-

सभी देशों के सभी धर्मों के अवतार हिन्दुओं के उपास्य देव हैं।

रूप में देखते हैं कि हम लोग कभी कभी ईसाइयों के गिर्जाघर या मुसलमानों की मसजिद में जाकर उपासना करते हैं। इसे अच्छा ही कहा जा सकता है हम लोग ऐसी उपासना क्यों न करें? मैंने पहले ही कहा है कि हम लोगों का धर्म सार्वभौमिक है। यह इतना उदार, इतना विशाल है कि यह सब तरह के आदर्श को ही ग्रहण कर सकता है। संसार में जितने भी धर्म के आदर्श हैं उन्हें अभी ग्रहण किया जा सकता है और भविष्य में जो आदर्श आयेंगे उनके लिये हम लोग धैर्य के साथ प्रतीक्षा कर सकते हैं। उन्हें भी इस रूप में ग्रहण करना होगा कि वेदान्त धर्म ही अपने अनन्त बाहुओं को पसार कर सभी को अपनी गोद में ले लेगा।

ऋषि अर्थात् जिन्होंने धर्म को साक्षात् रूप में प्राप्त किया है।

ईश्वर के अवतार के सम्बन्ध में मोटे तौर पर हम लोगों की धारणा यही है। इनकी अपेक्षा कुछ नीची श्रेणी के और एक प्रकार के महापुरुष हैं। वेदों में बार बार 'ऋषि' शब्द का उल्लेख पाया जाता है और आजकल यह एक चलता शब्द हो गया है। ऋषि वाक्य विशेष प्रामाणिक माने जाते हैं। हम लोगों को इसका तात्पर्य समझना होगा। ऋषि का अर्थ मन्त्र-द्रष्टा है अर्थात जिन्होंने किसी तत्व का साक्षात्कार किया है। अत्यन्त प्राचीन काल में ही

यह प्रश्न पूछा गया था कि धर्म का प्रमाण क्या है ? वहिरेन्द्रियों के साक्ष्य से धर्म की सत्यता प्रमाणित नहीं होती; यह अत्यन्त प्राचीन काल से ही ऋषि लोग कह गए हैं:—

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। २। ९

तैतिरीय उपनिषद।

अर्थात् मन के साथ वाक्य जिसे न पाकर वापस आता है।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति। १। ३ इत्यादि

—केन उपनिषद।

वहाँ पर चक्षु नहीं जा सकते, न वाक्य पहुँच सकता है न मन। इत्यादि।

सैकड़ों युग पहले ही ऋषि लोग यह बात कह गये हैं। वाह्य प्रकृति हम लोगों के आत्मा के अस्तित्व, ईश्वर के अस्तित्व, अनन्त जीवन मनुष्य का चरम लक्ष्य आदि किसी भी बात का उत्तर देने में असमर्थ है। इस मन का सदा यह परिणाम रहा है कि मानों उसका सदा प्रवाह चल रहा है। वह असीम है; वह मानो खंड खंड बँटा हुआ है। वह किस प्रकार उस अनन्त, अपरिवर्तनीय, अखंड, अविभाज्य सनातन वस्तु का सन्देश देगा ? कभी नहीं दे सकता ? और जभी मनुष्य जाति ने चैतन्य रहित जड़ से इन सब प्रश्नों का उत्तर पाने का व्यर्थ प्रयास किया है तब तब इतिहास जानता है कि उसका क्या अशुभ परिणाम हुआ है। तब यह वेदोक्त ज्ञान कहां से आया ?—ऋषित्व प्राप्त होने ही से यह ज्ञान प्राप्त होता है। इन्द्रियों की सहायता से

यह ज्ञान प्राप्त नहीं होता। क्या इन्द्रिय ज्ञान ही मनुष्य का सर्वस्व है? कौन ऐसा कहने का साहस करेगा? हमारे जीवन में, हम लोगों में से प्रत्येक के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं— या तो कोई प्रिय सम्बन्धी की मृत्यु हो जाय, अथवा अत्यन्त आनन्द का कारण उपस्थित हो जाय, इन सभी अवस्थाओं में मन एक तरह से स्थिर हो जाता है। बहुत बार कई अवस्थाओं में ऐसा होता है कि मन स्थिर होकर क्षण भर के लिये उसका असली स्वरूप देख पाता है, उस समय उस अनन्त का कुछ थोड़ा सा आभास पाता है, उस समय हम लोगों के सामने एक ऐसी वस्तु प्रकाशित होती है जहां पर मन अथवा वाक्य कुछ भी जा नहीं सकता। साधारण लोगों के जीवन में समय समय पर ऐसा होता है। अभ्यास द्वारा ही इस अवस्था को प्रगाढ़, स्थायी और सम्पूर्ण करना होगा। मनुष्य ने सैकड़ों युग पहले ही आविष्कार किया था कि आत्मा इन्द्रियों के द्वारा वद्ध वा सीमा वद्ध नहीं होता। केवल यही नहीं, वह ज्ञान के द्वारा भी सीमा-वद्ध नहीं है। हम लोगों को यह समझना होगा कि ज्ञान उस आत्मारूप अनन्त शृङ्खला का एक छोटा सा अंश मात्र है। ऋषियों ने ज्ञान की अतीत भूमि में बड़ी निर्भीकता से आत्मा का अनुसन्धान किया है। ज्ञान पंचेन्द्रिय द्वारा सीमावद्ध है। आध्यात्मिक जगत का सत्य प्राप्त करने के लिये मनुष्य को उसके अतीत प्रदेश, इन्द्रियों के वाहर जाना पड़ेगा। और अब भी ऐसे व्यक्ति हैं जो पञ्चेन्द्रियों की सीमा के वाहर जाने में असमर्थ

हैं। इन्हें ही ऋषि कहते हैं, क्योंकि इन्होंने आध्यात्मिक सत्यों का साक्षात्कार कर लिया है। इसलिये जिस प्रकार सामने के मेज़ को मैं जिस प्रकार देख रहा हूँ, उसी तरह वेद-निहित सत्य का प्रमाण भी वैसा ही प्रत्यक्षानुभूति है। मेज़ को इन्द्रियों की सहायता से हम लोग प्रत्यक्ष कर सकते हैं। और आध्यात्मिक सत्यों का भी जीवात्मा की ज्ञानातीत अवस्था में साक्षात होता है। यह ऋषित्व का प्राप्त होना देश, काल, लिङ्ग वा जाति विशेष के ऊपर निर्भर नहीं करता। वात्सायन ने साफ साफ कहा है यह ऋषित्व ऋषियों के वंशधर, आर्य अनार्य यहां तक कि म्लेच्छों तक की साधारण सम्पत्ति है।

वेदों के ऋषित्व कहने से यही समझा जाता है, हम लोगों को भारतीय धर्म के इस आदर्श को सदा स्मरण रखना होगा। और मैं चाहता हूँ कि संसार को अन्यान्य जातियाँ भी इस आदर्श को समझ कर स्मरण रखेंगी, क्योंकि ऐसा होने से एक धर्म के लोगों का दूसरे धर्म के लोगों से लड़ना झगड़ना बन्द हो जायगा। शास्त्रों के पढ़ने से धर्म की प्राप्ति नहीं होती वा मतमतान्तर के द्वारा, वचन द्वारा अथवा तर्क द्वारा भी धर्म की प्राप्ति नहीं होती। सब को धर्म का साक्षात करना होगा, ऋषि बनना पड़ेगा। भाइयो, जब तक आप में से प्रत्येक मनुष्य ऋषि नहीं हो जाता, जब

धर्म जीवन प्राप्त करने तक आप आध्यात्मिक सत्यों का साक्षा-
पर ऋषि होना होगा, त्कार कर नहीं लेते, तब तक आप निश्चय

बुद्धदेव और ब्राह्मण जानिये, आपका धार्मिक जीवन आरम्भ नहीं होगा। जब तक तुम्हारी यह ज्ञानातीत अवस्था खुल नहीं पड़ती तब तक धर्म केवल कहने भर की चीज़ है, तब तक धर्म प्राप्ति के लिये केवल तैयारी कर रहे हो, तब तक तुम दूसरे के मुँह का जूठा खाते हो। एक समय महात्मा बुद्ध के साथ कुछ ब्राह्मणों का तर्क वितर्क हो रहा था। उस समय उन्होंने एक सुन्दर कथा कही थी। वह यहां पर ठीक घटित होती है। ब्राह्मणों ने बुद्धदेव के पास जाकर उनसे ब्रह्म के सम्बन्ध में पूछा, उस महात्मा ने उनसे कहा, "क्या आप लोगों ने ब्रह्म को देखा है?" ब्राह्मणों ने कहा, "नहीं, हमने नहीं देखा है?" बुद्ध ने फिर उनसे पूछा, "आप के पिता ने उसे देखा है?" उन्होंने कहा, "नहीं, उन्होंने भी नहीं देखा है।" "आपके दादा ने देखा है" "जहाँ तक हम लोग जानते हैं; उन्होंने भी नहीं देखा है।" तब बुद्धदेव ने कहा, "भाइयो, आपके बाप दादोंने भी जिसे नहीं देखा, ऐसे पुरुष के सम्बन्ध में आप लोग किस तरह विचार द्वारा एक दूसरे को परास्त करने का प्रयत्न करते हैं?" सारा संसार यही कर रहा है। वेदान्त की भाषा में हम लोगों को भी कहना पड़ेगा:—

नायमात्मा वलहीनेन लभ्यो,
न मेधया न बहुना श्रुतेन। १। २। २२

कठोपनिषद

उस आत्मा को वागाडम्बर से प्राप्त नहीं किया जा सकता,

प्रबल मेधा द्वारा भी उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता, यहाँ तक कि वेद पाठ द्वारा भी नहीं प्राप्त किया जा सकता।

संसार की सभी जातियों को वेद की भाषा में हम लोगों को कहना होगा कि तुम लोगों का वाद विवाद करना व्यर्थ है, तुम लोग जिस ईश्वर का प्रचार करना चाहते हो, क्या उसे कभी देखा है? अगर नहीं देखा है, तो तुम्हारा प्रचार व्यर्थ है। तुम क्या कह रहे हो, उसे तुम्हीं नहीं जानते; और अगर तुम ईश्वर को देख लोगे तो तुम विवाद न करोगे, तुम्हारे मुख की कुछ और ही शोभा हो जायगी। एक ऋषि ने अपने पुत्र को ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति के लिये गुरु के घर भेजा। जब लौट कर आया, पिता ने पूछा, "तुमने क्या सीखा?" पुत्र ने कहा कि मैंने अनेक विद्यायें सीखी हैं। पिता ने कहा, "तुमने कुछ नहीं सीखा, जाओ फिर गुरु के घर फिर जाओ।" पुत्र फिर गुरु के घर गया। फिर जब वहाँ से लौट कर आया तो पिता ने वही प्रश्न पूछा। पुत्र ने फिर उन सभी विद्याओं के सीखने की बात कही। उसे फिर एक बार गुरु के घर जाना पड़ा। फिर जब वहाँ से वह लौट कर आया तो उसके मुँह की शोभा ही कुछ और हो गई थी। तब पिता ने कहा, "बेटा, अब तुम्हारा चेहरा, स्वर, ब्रह्म को जानने वाले की तरह दमक रहा है।" जब आप लोग ईश्वर को जान जाओगे तब आपका चेहरा, आपकी सारी आकृति ही बदल जायगी। तब आप मानव जाति के लिये महाकल्याणकारक बन जाँयगे। ऋषि हो जाने पर

कोई आप की शक्ति को रोकने में समर्थ न होगा। यही ऋषित्व है और यही हमारे धर्म का आदर्श है। बाकी जो कुछ है, वह सब वचन, दर्शन, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, यहाँ तक कि वेद तक—इसी ऋषित्व की तैयारी के लिये हैं। ऋषित्व प्राप्ति ही मुख्य है। 'वेद व्याकरण, ज्योतिष सभी गौण हैं।' चरम ज्ञान वही है, जिसके द्वारा हम उस अपरिणामी वस्तु का साक्षात्कार कर सकें। जिन्होंने उसका साक्षात किया है, वे ही वैदिक ऋषि हैं। ऋषि से हम लोग एक श्रेणी के विशेष अवस्था के व्यक्ति का भाव ग्रहण करते हैं। यथार्थ में हिन्दू कहलाने के लिये हम लोगों में से प्रत्येक को अपने जीवन की किसी न किसी अवस्था में इस ऋषित्व को प्राप्त करना होगा और ऋषित्व प्राप्त करना ही मुक्ति है। कई मतों में विश्वास रखने हज़ारों मन्दिरों में देव दर्शन करने या संसार में जितनी नदियाँ हैं, उन सब में स्नान करने से हिन्दुओं के मत से मुक्ति न होगी। ऋषि होने, मंत्र-द्रष्टा होने से ही मुक्ति प्राप्त होगी।

बाद के समय की आलोचना करने पर हमको ज्ञात होता है कि इस समय में सारे संसार में उथल-पुथल मचाने वाले महापुरुषों, अवतारों ने जन्म ग्रहण किया है। अवतारों की संख्या बहुत ज्यादा है। भागवत के मन्त्र से अवतारों की संख्या ज्यादा है। उनमें राम और कृष्ण ही भारत में सब से अधिक पूजे जाते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने उस प्राचीन वीर युग के आदर्श, सत्य-परायणता और सम्पूर्ण नीति तत्व के मूर्ति स्वरूप आदर्श पुत्र,

आदर्श पति, आदर्श पिता, सर्वोपरि आदर्श राजा रामचन्द्र के

भगवान रामचन्द्र

चरित्र को चित्रित करके हम लोगों के सामने रख दिया है। इस महाकवि ने जिस भाषा में राम चरित्र का वर्णन किया है, उससे बढ़ कर शुद्ध, मधुर और सरल भाषा नहीं हो सकती। और सीता का तो कहना ही क्या! आप संसार के सारे प्राचीन साहित्य को छान डालिये, संसार के भावी साहित्य को भी समाप्त कर डालिये, लेकिन मैं आपसे स्पष्ट कहता हूँ कि आपको उनमें सीता जैसा उज्ज्वल चरित्र कहीं पर दिखलाई न पड़ेगा।

आदर्श हिन्दूनारी सीता

सीता का चरित्र असाधारण है। यह चरित्र भी एक बार ही चित्रित हुआ है। और कभी नहीं हुआ है और न कभी होगा ही। राम तो कई हुए होंगे, लेकिन सीता दूसरी नहीं हुई है। भारतीय रमणियों को जैसा होना चाहिये, सीता उनके लिये आदर्श हैं। रमणी-चरित्र के जितने तरह के भारतीय आदर्श हैं, वे सभी सीता के चरित्र में ही आश्रित हैं और सम्पूर्ण भारत में हजारों वर्षों से यहाँ के बच्चे बुड्डे स्त्री-पुरुष द्वारा पूजित हो रही हैं। महामहिमाशालिनो सीता जो शुद्ध से भी शुद्ध और सहिष्णुता की मूर्ति हैं, सदा इसी प्रकार पूजित होंगी। जिन्होंने जरा भी विरक्ति न प्रकट कर उस विपत्ति काल में अपना जीवन बिताया था, वही नित्य साध्वी, नित्य शुद्ध स्वभाव वाली आदर्श पत्नी सीता, इस नर

लोक ही क्यों, देव लोक के लिये आदर्श रूप सीता सदा हमारे जातीय देवता के रूप में वर्तमान रहेंगी। हम सभी लोग उनके चरित्र को विशेष रूप से जानते हैं, इसलिये उसका विशेष वर्णन करना आवश्यक नहीं है। हम सब लोगों के पुराण नष्ट हो सकते हैं, यहाँ तक कि वेद तक लोप हो सकते हैं, हमारी संस्कृत भाषा तक सदा के लिये काल स्रोत में लुप्त हो सकती है, किन्तु मेरी बात को ध्यान दे कर सुनिये; जब तक भारत में देहात की बोली बोलने वाले ५ हिन्दू रहेंगे, तब तक सीता का उपाख्यान रहेगा। सीता हम लोगों की मज्जा मज्जा में प्रवेश कर गयी हैं, प्रत्येक हिन्दू स्त्री-पुरुष के खून में वह विराजमान हैं। हम सभी सीता की सन्तान हैं। हमारी स्त्रियों को आधुनिक ढंग पर बनाने के जो भी प्रयत्न हो रहे हैं, अगर वे प्रयत्न उन्हें सीता चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट करने के लिये होंगे, तो अवश्य असफल होंगे। और हम लोग हर रोज इसका दृष्टान्त देखते हैं। भारतीय स्त्रियों को सीता के पद चिन्हों का अनुसरण कर अपनी उन्नति करने का प्रयत्न करना होगा। यही भारतीय स्त्रियों की उन्नति का एकमात्र मार्ग है।

इसके बाद उनकी कथा की आलोचना की जाय जो कई भावों से पूजे जा रहे हैं, जो भारत के स्त्री-पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभो के परम प्रिय इष्ट देवता हैं। मैं उन्हें लक्ष्य करके यह बात कह रहा हूँ, जिन्हें भागवतकार अवतार ही कह कर गीता की साकार मूर्ति तृप्त नहीं होते, वह कहते हैं—

भगवान श्रीकृष्ण   एते चांश कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान स्वयम्
१—३—२८

और दूसरे अवतार उस भगवान के अंश और कला स्वरूप हैं, लेकिन कृष्ण स्वयं भगवान हैं।

जब हम उन के अनेक भावों से पूर्ण चरित्र की आलोचना करते हैं तब उनके लिये जो इस प्रकार के विशेषण प्रयुक्त होते हैं, उनके लिये आश्चर्य नहीं होता। वह अपूर्व सन्यासी और अद्भुत गृही थे, उनमें अद्भुत रजोगुण का विकाश देखा जाता था, साथ ही उनका त्याग भी अद्भुत था। गीता को पढ़े बिना उनका चरित्र कभी समझ में नहीं आ सकता, क्योंकि वह स्वयं अपने उपदेश के मूर्तिमान स्वरूप थे। सभी अवतार ही जो कुछ प्रचार करने के लिये अवतारित हुए थे, उसके जीते जागते उदाहरण थे। गीता के प्रचारक श्रीकृष्ण भगवद्गीता की साकार मूर्ति थे, वह अनासक्ति के दृष्टान्त स्वरूप थे। उन्होंने बहुतों को राजा बनाया, लेकिन स्वयं सिंहासन पर न बैठे। वह सम्पूर्ण भारतवर्ष के नेता थे, जिसके सामने बड़े बड़े राजा सिंहासन छोड़कर सर झुकाते थे। उन्होंने कभी राजा बनने की इच्छा न की। वह लड़कपन में जिस प्रकार सरल भाव से गोपियों के साथ क्रीड़ा करते थे, जीवन की अन्य अवस्थाओं में भी उनकी वही सरलता दिखलाई पड़ती है।

उनके जीवन की उसी चिरस्मरणीय अध्याय की कथा याद पड़ती है जो अत्यन्त दुर्बोध्य है। जब तक कोई पूर्ण ब्रह्मचारी

और पवित्र स्वभाववाला नहीं हो तब तक उसे समझने की चेष्टा करना उचित नहीं। उस प्रेम का अत्यन्त अद्भुत विकास है जो उस बृन्दावन की मधुर लीला में रूपक के तौर पर वर्णन किया गया है। प्रेम-मदिरा को पीकर जो एक बारगी उन्मत्त है, उसे छोड़कर दूसरा उसे समझने में असमर्थ

श्रीकृष्ण और गोपीप्रेम

है। कौन ऐसा है जो गोपियों के प्रेम-जनित विरह-यंत्रणा के भाव को समझने में समर्थ है। उनका प्रेम—प्रेम का चरम आदर्श है, वह प्रेम और कुछ नहीं चाहता, जो स्वर्ग तक की आकांक्षा नहीं करता, जो इस लोक और परलोक की किसी वस्तु की कामना नहीं रखता। हे भाइयो, इसी गोपीप्रेम के द्वारा ही सगुण निर्गुण ईश्वरवाद का सामंजस्य हुआ है। हम जानते हैं मनुष्य सगुण ईश्वर से उच्चतर धारणा करने में असमर्थ है। हम यह भी जानते हैं कि दार्शनिक दृष्टि से सम्पूर्ण जगत-व्यापी-समग्र संसार जिसका विकाश मात्र है—उसी निर्गुण ईश्वर में विश्वास हो स्वाभाविक है। इस तरफ तो हम लोगों का मन एक साकार वस्तु चाहता है, ऐसी वस्तु चाहता है जिसको हम लोग ग्रहण कर सकें, जिसके चरण कमल पर हम लोग सर्वस्व न्यौछावर कर सकें। इसलिये सगुण ईश्वर ही मानव स्वभाव की चूड़ान्त धारणा है किन्तु युक्ति उस धारणा से संतुष्ट नहीं हो सकती। यह वही अत्यन्त प्राचीन समस्या है जिस पर ब्रह्म सूत्र में विचार किया गया है। जिस

पर बनवासकाल में द्रौपदी युधिष्ठिर में बातचीत हुई थी। यदि कोई सगुण, सम्पूर्ण दयामय सर्वशक्तिमान ईश्वर है तो इस नरकतुल्य संसार का अस्तित्व क्यों है? क्यों उन्होंने इसकी सृष्टि की? उन्हें एक बड़ा पक्षपाती ईश्वर कहना पड़ेगा, इसकी कोई मीमांसा नहीं हो सकती। केवल गोपिकाओं के प्रेम के सम्बन्ध में शास्त्रों में जो कुछ पढ़ा है, उसी से इसकी मीमांसा हुई है। कृष्ण के प्रति किसी विशेषण का प्रयोग करना वे नहीं चाहती थीं, वह सृष्टिकर्ता है, वह सर्वशक्तिमान है, इसे भी वे जानना नहीं चाहती थीं। वे केवल यही जानती थीं कि वह प्रेम-मय है, यही उनके लिये काफ़ी है। गोपियाँ श्रीकृष्ण को केवल वृन्दावन का कृष्ण समझती थीं। वह बहुत सेना के नेता राजाधिराज कृष्ण उनके लिये तो वही ग्वालबाल श्रीकृष्ण थे।

'न धनं, न जनं न कवितां सुन्दरी वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवतु भक्तिरहैतुकी त्वयि।'

'हे जगदीश, मैं धन, जन, कविता वा सुन्दरी—कुछ की चाहना नहीं करता, हे ईश्वर मैं यही चाहता हूँ कि जन्म जन्म में आपके प्रति मेरी अहेतु की भक्ति हो।' धर्म के इतिहास में यह अहेतु की भक्ति, यह निष्काम कर्म एक नया अध्याय है और मनुष्य के इतिहास में भारत क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ अवतार श्रीकृष्ण भगवान के मुँह से सबसे पहले यही तत्व निकला है। भय का धर्म, कामना का धर्म सदा के लिये चला गया और मनुष्य के हृदय में स्वाभाविक नरक का भय और स्वर्ग-सुख के

भोग की इच्छा के रहते हुए भी यह अहेतु की भक्ति और निष्काम कर्म रूप श्रेष्ठ आदर्श का अभ्युदय हुआ।

इस प्रेम की महिमा और कौन कह सकता है! मैंने आप लोगों से इतना ही कहा है कि गोपिकाओं का सा प्रेम प्राप्त करना बड़ा ही कठिन है। हम लोगों में ऐसे मूर्खों की कमी नहीं है जो श्रीकृष्ण के जीवन के इस अद्भुत अंश के विचित्र तात्पर्य को समझने में असमर्थ हैं। मैं फिर कहता हूँ कि हमी लोगों के साथ खून के सम्बन्ध से सम्बद्ध बहुत से अशुद्धात्मा मूर्ख लोग हैं जो इसे अत्यन्त अपवित्र कार्य समझकर भय से दस हाथ पीछे हट जाते हैं। इनसे मैं केवल यही कहना चाहता हूँ कि आप अपने मन को पहले शुद्ध कीजिये। आप को यह भी स्मरण रखना होगा कि जिन्होंने गोपियों के इस अद्भुत प्रेम का वर्णन किया है, वह और कोई नहीं, वही आजन्म शुद्ध व्यास-पुत्र शुक हैं। जितने दिन तक हृदय में स्वार्थपरता रहती है, तब तक भगवत्-प्रेम असंभव है। यह केवल दुकानदारी है, मैं कुछ तुम्हें देता हूँ, हे प्रभो, तुम मुझे कुछ दो। भगवान कहते हैं अगर तुम ऐसा न करोगे, तो तुम्हारे मरने पर मैं तुम्हें देख लूँगा। मैं सदा तुम्हें जला जला कर मारूँगा। कामना वाले मनुष्य की ईश्वर के सम्बन्ध में ऐसी ही धारणा होती है। जब तक दिमाग़ में इस तरह के भाव रहते हैं, तब तक गोपियों की प्रेम-जनित विरह की उन्मत्तता को लोग किस तरह समझ सकते हैं?

सुरत वर्द्धनं शोकनाशनं स्वरित वेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतर राग विस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ।

१०-३१-१४ श्री मद्भागवत ।

"एक बार, केवल एक बार ही यदि उस अधर का चुम्बन किया जाय, जिसे आपने एक बार चुम्बन किया है, सदा से तुम्हारे लिये उसकी प्यास बढ़ती रहती है, उसका सारा दुःख दूर हो जाता है। उस समय हम लोगों की अन्यान्य सभी विषयों की आसक्ति दूर हो जाती है, केवल तुम्हीं उस समय एक मात्र प्रिय-पात्र होते हो।

पहले इस कांचन, नाम यश; इस क्षुद्र संसार के प्रति आसक्ति छोड़ कर देखो। तभी तुम गोपियों का प्रेम क्या वस्तु है, समझ सकोगे। वह इतना विशुद्ध पदार्थ है कि सर्वस्व त्याग किए बिना उसे समझने की कोशिश करना ठीक नहीं। जब तक आत्मा बिल्कुल पवित्र नहीं होता, तब तक उसे समझने की चेष्टा करना व्यर्थ है! प्रति क्षण जिसके हृदय में कामिनी कांचन और यश लिप्सा के बुदबुदे उठते रहते हैं, वही उन गोपिकाओं के प्रेम को समझने और उसकी समालोचना करने चलता है। कृष्ण के अवतार का मुख्य उद्देश्य यही है, वह गोपी-प्रेम की शिक्षा देता है। दर्शन शास्त्र में श्रेष्ठ गीता तक भी उस प्रेमोन्मत्तता के पास खड़ी नहीं हो सकती। क्योंकि गीता में साधक को धीरे धीरे उस चरम लक्ष्य मुक्ति साधन का उपदेश दिया गया है,

गीतोक्त उपदेश के ऊपर भी गोपी-प्रेम का स्थान है, केवल त्यागियों का ही उस पर अधिकार है

किन्तु इस गोपी प्रेम में ईश्वर-रसास्वादन की उन्मत्तता है, घोर प्रेमोन्मत्तता विद्यमान है। वहाँ गुरु शिष्य शास्त्रोपदेश, ईश्वर स्वर्ग सब कुछ एकाकार है, भय का, धर्म का लेश मात्र भी नहीं रहता, सब कुछ लोप हो जाता है, रह जाता है केवल प्रेमोन्मत्तता। उस समय संसार की और कोई वस्तु मन में नहीं रह जाती उस समय भक्त संसार में उस कृष्ण, केवल उसी कृष्ण को छोड़कर और कोई नहीं देखता है, उस समय वह सब प्राणियों में कृष्ण ही की मूर्ति देखता है, उसका मुँह तक कृष्ण की तरह दिखलाई पड़ता है। उसकी आत्मा श्रीकृष्ण के रंग में रँग जाती है, भगवान श्रीकृष्ण की ऐसी महिमा है।

कृष्ण जीवन की और छोटी छोटी घटनाओं को लेकर आप अपने समय को व्यर्थ न खोयें, उनके जीवन का जो मुख्य अंश है, उसका ही अवलम्बन करें। सम्भव है, बहुत से इतिहासवेत्ता श्री कृष्ण के जीवन चरित्र को गलत सिद्ध करें, बहुत सी बातें प्रक्षिप्त बतलायें, यह सब ठीक हो सकता है, लेकिन यह सब कुछ होने पर भी उस समय समाज में जो एक नये भाव का अभ्युदय हुआ था, उसका कारण अवश्य था। दूसरे किसी भी

कृष्णोपदेश की नवीनता

महापुरुष के जीवन की आलोचना करने पर देखा जाता है, कि वह पहले के

और कृष्ण का ऐतिहासिक तत्व

कितने भावों की प्रतिध्वनि मात्र हैं। हम देखते हैं कि वे अपने देश, इतना ही नहीं, उस समय जो शिक्षायें प्रचलित थीं केवल उन्हीं का, प्रचार कर गये हैं। यहाँ तक कि वह महापुरुष हुए थे या नहीं, इसी सम्बन्ध में बड़ा सन्देह होने लगता है। किन्तु कृष्ण का उपदेश यह निष्काम कर्म और निष्काम प्रेम तत्व संसार के लिये कोई नवीन बात नहीं, इस पर विचार करके देखिये। आपको स्वीकार करना ही पड़ेगा कि किसी एक व्यक्ति ने निश्चय ही इन तत्वों का आविष्कार किया होगा। इन तत्वों को किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा लिखा हुआ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि कृष्ण के आविर्भाव के समय सर्व साधारण में यह तत्व प्रचलित थे, ऐसा देखने में नहीं आता। भगवान कृष्ण ही सबसे पहले इसके प्रचारक हैं, उनके शिष्य वेद-व्यास ने उन तत्वों को सर्व साधारण में फैलाया। मनुष्य जाति की भाषा में इससे श्रेष्ठ आदर्श कभी भी चित्रित नहीं हुआ है। हम लोग उनके ग्रन्थ में गोपीवल्लभ, वृन्दावन-विहारी गोपाल से और कोई ऊँचा आदर्श नहीं पाते। जब आपके मस्तिष्क में वह उन्मत्तता समायगी, तब आप भाग्यशालिनी गोपियों के भावों को समझेंगे, तभी आप प्रेम क्या वस्तु है, समझ जाँयगे। जब कि सारा संसार आपकी दृष्टि से ग़ायब हो जायगा, जब आपके हृदय में और कोई कामना नहीं रह जायगी, जब आपका हृदय बिल्कुल शुद्ध हो जायगा, और कोई लक्ष्य नहीं रह जायगा, यहाँ

तक कि आप में सत्य के अनुसंधान की इच्छा भी न रह जायगी, तभी आप के हृदय में उस प्रेमोन्मत्तता का आविर्भाव होगा, तभी आप गोपियों के अहेतु की शक्ति को समझेंगे। यही लक्ष्य है। जब वह प्रेम पा लिया, तब सब कुछ पा लिया।

गीता - प्रचारक श्रीकृष्ण

अब मैं कुछ नीचे उतर कर गीता-प्रचारक श्रीकृष्ण की आलोचना करूँगा। भारत में इस समय बहुतों में एक चेष्टा देखने में आती है, वह मानों घोड़ा में गाड़ी जोतने की तरह है, हम लोगों में से बहुतों की धारणा है कि कृष्ण ने गोपियों के साथ प्रेमलीला की थी, यह कैसी बात है! साहब लोग भी इसे बहुत पसन्द नहीं करते। अमुक पंडित इस गोपी-प्रेम को अच्छा नहीं समझते। तो क्या होगा? गोपियों को यमुना के जल में डुबा दो! साहब लोगों को अनुमति न होने से श्रीकृष्ण टिक ही कैसे सकते हैं? कभी नहीं टिक सकते। महाभारत में दो एक स्थलों को वे स्थल विशेष उल्लेख योग्य नहीं हैं—छोड़कर गोपियों का जिक्र ही नहीं है। केवल द्रौपदी-चीर-हरण और शिशुपाल की वक्तृता में वृन्दावन का जिक्र आता है।

ये सब प्रक्षिप्त हैं। अंग्रेज लोग जिसे नहीं चाहते उसे छोड़ देना होगा। गोपियों की कथा यहाँ तक कि कृष्ण की कथा तक प्रक्षिप्त है। जो लोग ऐसे पक्के बनिया हैं, जिनके धर्म का आदर्श तक व्यवसाय हो रहा है, उन सब का मनोभाव यही है कि वे

इस लोक में कुछ करके स्वर्ग जाँयगे। बनिया लोग सूद दर सूद चाहते हैं, वे यहाँ पर कुछ पुण्य संचित करके जाना चाहते हैं जिसके फल से स्वर्ग में जाकर सुख भोग करेंगे। इनकी धर्म-प्रणाली में अवश्य ही गोपियों के लिये स्थान नहीं है।

मैं यहाँ पर उन आदर्श प्रेमी श्री कृष्ण की कथा छोड़कर कुछ नीचे उतर कर गीता प्रचारक श्री कृष्ण की कथा की आलोचना करूँगा। यहाँ पर भी हम देखते हैं कि गीता की तरह वेद का भाष्य और कभी नहीं हुआ और न होगा। वेदों अथवा उपनिषदों का मतलब समझना बहुत कठिन है, क्योंकि अनेक भाष्यकारों ने अपने मत के अनुसार ही उसकी व्याख्या करने की कोशिश की है। अन्त में जो स्वयं श्रुति के वक्ता हैं, वे ही भगवान ने स्वयं आकर गीता के प्रचारक रूप में श्रुति का अर्थ समझाया और आज भारत में उस व्याख्या-प्रणाली की जैसी आवश्यकता है, सारे संसार में वैसी आवश्यक कोई चीज़ नहीं हैं। आश्चर्य की बात है कि परवर्ती शास्त्रों की व्याख्या करने वालों ने गीता की व्याख्या करते समय भी भगवान के कहे हुए वाक्यों का तात्पर्य नहीं समझा है। गीता में क्या दिखलाई पड़ता है और आधुनिक भाष्यकारों के भीतर ही क्या दिखलाई पड़ता है? मान लीजिये कोई अद्वैतवादी भाष्यकार हैं, उन्होंने उपनिषद् की व्याख्या करनी आरम्भ की। उसके भीतर अनेक द्वैत भावात्मक

> गीता ही श्रुति का एक मात्र प्रामाणिक भाष्य है, इसी में सब मतों का समन्वय है।

वाक्य हैं, उन्हें भी तोड़ मरोड़ कर अपने मन के मुताबिक अर्थ लगा लिया। उसी तरह से द्वैतवादी भाष्यकार ने अद्वैतवादात्मक वाक्यों को तोड़ मरोड़ कर अपने मन के अनुसार अर्थ लगा लिया। किन्तु गीता में श्रुति के तात्पर्य को इस तरह विकृत करने का प्रयत्न नहीं किया गया है। भगवान कहते हैं ये सभी सत्य हैं, जीवात्मा धीरे धीरे स्थूल से सूक्ष्मता की ओर बढ़ती जाती है, इस प्रकार क्रमशः वह चरमलक्ष्य अनन्त पूर्ण को पहुँचती है। गीता में इसी प्रकार वेद का तात्पर्य वर्णन किया गया है। यही

विभिन्न प्रकार के साधन प्रणाली की आवश्यकता

क्यों, कर्म काण्ड तक गीता में स्वीकृत हुआ है और यह दिखलाया गया है कि यद्यपि कर्म कांड प्रत्यक्ष रूप में मुक्ति का साधन नहीं है, गौण भाव से मुक्ति का साधन है तो भी वह सत्य है, मूर्ति-पूजा भी सत्य है। सब तरह के अनुष्ठान आदि भी सत्य हैं, केवल एक विषय की ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये, वह है चित्त की शुद्धि। यदि हृदय शुद्ध और कपट-रहित हो, तभी उपासना ठीक होती है और हम लोगों को चरम लक्ष्य तक पहुँचाती है। ये सभी भिन्न भिन्न प्रकार की उपासनायें सत्य हैं, क्योंकि अगर वे सत्य न होतीं तो किस प्रकार उनकी सृष्टि होती? आज कल के बहुत से लोगों का मत है कि विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय कुछ ढोंगी और दुष्ट लोगों के चलाये हुए हैं। उन्होंने कुछ धन के लोभ से इन धर्मों और सम्प्रदायों की सृष्टि की। यह

कहना बिल्कुल भूल है। उनकी व्याख्या देखने में चाहे कितनी युक्तिपूर्ण क्यों न हो, लेकिन वह सत्य नहीं है, वे इस प्रकार नहीं बनाये गये हैं। जीवात्मा के स्वाभाविक प्रयोजन से उनकी उत्पत्ति हुई हैं। विभिन्न श्रेणी के मनुष्यों की धर्म-पिपासा को चरितार्थ करने के लिये उनका अभ्युदय हुआ है इसलिये उनके विरुद्ध खड़े होने से कोई फल नहीं निकलेगा। जिस दिन उनकी आवश्यकता न रह जायगी, उस दिन उस आवश्यकता के अभाव के साथ ही वे भी लुप्त हो जायँगी। और जब तक यह आवश्यक रहेगी, तब तक आप उनकी कड़ी से कड़ी समालोचना क्यों न करें, उनके विरुद्ध चाहे कितना ही प्रचार क्यों न करें, वे अवश्य ही विद्यमान रहेंगी। तलवार और बन्दूक की सहायता से संसार को खून के सोते में बहा दिया जा सकता है किन्तु जब तक प्रतिमा की आवश्यकता रहेगी, तब तक मूर्तिपूजा अवश्य ही होती रहेगी। यह अनुष्ठान की विभिन्न पद्धति और धर्म के विभिन्न सोपान अवश्य ही रहेंगे। हम लोग भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेश से समझ सकते हैं कि उनकी क्या आवश्यकता है।

श्रीकृष्ण के तिरोभाव के कुछ समय बाद ही भारतीय इतिहास का एक शोचनीय अध्याय आरंभ हुआ। हम लोग गीता ही में सम्प्रदायों के विरोध की प्रतिध्वनि सुन पाते हैं, और उस सामञ्जस्य के अद्भुत उपदेशक भगवान श्रीकृष्ण बीच में पड़कर विरोध को दूर कर देते हैं। वह कहते हैं,—

'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव' । ७ । ७

—गीता

'जिस प्रकार सूत में मणि पिरोये जाते हैं, वैसे ही मुझमें ही सब कुछ ओतप्रोत भाव से विद्यमान हैं।'

हम लोगों को उसी समय से साम्प्रदायिक विरोध की दबी हुई आवाज़ सुनाई पड़ती है। सम्भवतः भगवान के उपदेश से वह विरोध कुछ काल के लिये कम हो गया था और बहुत कुछ शान्ति और एकता स्थापित हो गई थी, लेकिन फिर से वह विरोध उठ खड़ा हुआ। केवल धर्म मत को लेकर ही नहीं, जाति को लेकर भी यह विवाद खड़ा हुआ—हमारे समाज के दो प्रबल अंग ब्राह्मण और क्षत्रियों के बीच विवाद आरम्भ हुआ। हज़ारों वर्षों तक जो बड़ी धारा सम्पूर्ण भारतवर्ष को डुबो रही थी, उसी समय हम लोग एक महान् मूर्ति का दर्शन पाते हैं। वह और कोई नहीं, भगवान बुद्ध हैं। आप सब लोग उनके उपदेश और प्रचार-कार्य को जानते ही हैं। हम लोग उन्हें ईश्वर का अवतार समझ कर पूजा करते हैं। संसार में नीतितत्व का इतना बड़ा प्रचारक और कहीं कभी देखने में नहीं आया। मानो स्वयं श्रीकृष्ण ही स्वयं अपने मत को कार्य रूप में परिणत करने के लिये आविर्भूत हुए। फिर वह वाणी आविर्भूत हुई, जिसने गीता में शिक्षा दी थी—

कर्मयोगी श्रेष्ठ भगवान बुद्ध

स्वल्पमपस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। २। ४०

इस धर्म का साधारण अनुष्ठान भी बहुत बड़े भय से रक्षा करता है।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परांगतिम् ६। ३२ गीता

'स्त्री, वैश्य, यहाँ तक कि शूद्र तक परम गति को प्राप्त होता है।' गीता की वाणी, श्रीकृष्ण की वज्र के समान गम्भीर वाणी सब की शृङ्खला को तोड़ देती है, सब के लिये उस परम पद को पाने के अधिकार की घोषणा करती है।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्येस्थितं मनः।
निर्दोषंहि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः। गीता। ५। १६

जिनका मन समभाव से अवस्थित है, उन्होंने यहीं पर संसार को विजय कर लिया है। ब्रह्म समभाव रखने वाले और निर्दोष हैं, इसलिये वे ब्रह्म में स्थित हैं।

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवास्थितमीश्वरम्
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो यातिपरां गतिम्। गी० १३। २८

परमेश्वर को सर्वत्र समभाव से अवस्थित देख कर वह अपने द्वारा आत्मा का नाश नहीं करता और इसी से वह परम गति को प्राप्त होता है।

गीता के उपदेश के जीते जागते उदाहरण स्वरूप, वह अक्षर अक्षर कार्य रूप में परिणत हो, इसी के लिये गीता के उपदेशक ने अन्य रूप में मृत्युलोक में अवतार लिया। यही

शाक्य मुनि हैं। यह दीन दुखियों को उपदेश देने लगे। यह दीन दुखियों, तथा सर्वसाधारण के हृदय को अपनी ओर खींच सकें, इसके लिये वे देव भाषा संस्कृत तक को छोड़कर सर्व साधारण की भाषा में उपदेश देने लगे। ये राजसिंहासन को छोड़कर दुखी दरिद्र पतित भिक्षुकों के साथ रहने लगे; दूसरे राम की तरह चांडाल को छाती से लगाने लगे।

बुद्ध कृष्ण के गीता में कहे हुए कर्म योग को अपने जीवन में दिखलाने के लिये आये थे

आप सब लोग उनके महान् चरित्र और अद्भुत प्रचार-कार्य को जानते हैं। लेकिन इस प्रचार-कार्य में एक बड़ी भारी त्रुटि थी। उसके लिये हम लोग आज तक भुगत रहे हैं। भगवान् बुद्ध का इसमें कोई दोष नहीं था, उनका चरित्र अत्यन्त पवित्र और महिमापूर्ण था। दुःख की बात है कि बौद्ध धर्म-प्रचार के द्वारा जो असभ्य और अशिक्षित जातिताँ आर्य जाति में शामिल होने लगीं, वे बुद्धदेव के बतलाये हुये मार्ग को ठीक ठीक समझ नहीं सकीं। इन जातियों में तरह तरह के कुसंस्कार और उपासना की बड़ी बुरी पद्धति प्रचलित थी। वे दल के दल आर्यजाति में सम्मिलित होने लगीं। कुछ समय तक तो ऐसा जान पड़ा कि वे सभ्य हो गयी हैं लेकिन एक शताब्दी बीतते न बीतते वे अपने पुरखों के भूत सर्प आदि की पूजा

बौद्ध धर्म की अवनति भारतीय सामाजिक जीवन में उसका बुरा परिणाम

समाज में चलाने लगीं। इस प्रकार सम्पूर्ण भारत कुसंस्कारों से भर गया और उसकी घोर अवनति होने लगी। पहले तो बौद्ध लोग प्राणि हिंसा की निन्दा करके वैदिक यज्ञों के घोर विरोधी हो उठे थे। उस समय घर घर में यज्ञ होते थे। प्रत्येक घर में यज्ञ के लिये अग्नि प्रज्वलित होती, यज्ञ में कुछ आडम्बर न होता था। बौद्ध धर्म-प्रचार से ये यज्ञादि कर्म लुप्त हो गये, उसके स्थान पर बड़े बड़े ऐश्वर्यशाली मन्दिर, आडम्बर-पूर्ण अनुष्ठान, पाखंडी पुरोहित तथा वर्तमान समय में भारत में जो कुछ दिखलाई पड़ता है, उन सब का आविर्भाव हुआ। जिनसे अधिक सत्यता की आशा की जाती है, ऐसे बहुत से आधुनिक व्यक्तियों के ग्रन्थों में पढ़ा जाता है कि बुद्ध देव ने ब्राह्मणों की मूर्ति-पूजा को उठा दिया था, मैं इसे पढ़कर अपनी हँसी नहीं रोक सकता। वे यह नहीं जानते कि बौद्ध धर्म ने ही भारत में ब्राह्मण-धर्म और मूर्ति पूजा की सृष्टि की थी। दो एक वर्ष पहले की बात है, एक रूसी सज्जन ने एक पुस्तक प्रकाशित कराई। उन्होंने उसमें यह दावा किया कि उन्हें ईसा मसीह का एक अद्भुत जीवन चरित मिला है। वह उस पुस्तक में एक स्थान पर लिखते हैं कि ईसा मसीह ब्राह्मणों के पास धर्म की शिक्षा पाने के लिये जगन्नाथ जी के मन्दिर में गये, लेकिन उनकी संकीर्णता और मूर्ति-पूजा से विरक्त होकर वहाँ से तिब्बत में लामा के पास धर्म की शिक्षा पाने के लिये गये और उनसे उपदेश पाकर अपने देश को लौट आये। जो भारत के इतिहास

रूस के एक सज्जन द्वारा लिखित ईसा की जीवनी उनके भारत आने की कपोल कल्पना

से कुछ भी परिचित हैं, वे जानते हैं कि इस पुस्तक में लिखी हुई बात कहाँ तक सार है, जगन्नाथ जी का मन्दिर पुराना बौद्ध मन्दिर है। हम लोगों ने इसको तथा अन्यान्य बौद्ध मन्दिरों को हिन्दू मन्दिर बना लिया। इस तरह के काम हम लोगों को अब भी करने होंगे। वही जगन्नाथ का इतिहास है और उस समय एक भी ब्राह्मण न था तो भी कहा जाता है कि वहाँ पर ईसा मसीह ब्राह्मणों से उपदेश लेने के लिये आये थे। हमारे रूसी दिग्गज विद्वान यह बात बतलाते हैं! पूर्वोक्त कारणों से बौद्ध धर्म को सब प्राणियों में दया, उसका अपूर्व नीति-तत्व और नित्य आत्म का अस्तित्व तथा पक्का विचार के रहते भी सारा बौद्ध धर्म रूपी प्रासाद चूर्ण विचूर्ण हो गया और चूर्ण होने पर जो भग्नावशेष रह गया वह अत्यन्त वीभत्स है। बौद्ध धर्म की अवनति के परिणाम स्वरूप जो वीभत्स व्यापार होने लगे, उन्हें वर्णन करने के लिये न तो मेरे पास समय ही है और न मेरी इच्छा ही है। वे अत्यन्त वीभत्स अनुष्ठान, अत्यन्त भयानक और अश्लील ग्रन्थ जिनकी मनुष्य का मस्तिष्क कल्पना नहीं कर सकता ये सभी बातें अवनत बौद्ध धर्म की सृष्टि हैं।

किन्तु भारत की जीवनी शक्ति उस समय भी नष्ट नहीं हुई थी इसी से फिर भगवान का आविर्भाव हुआ। जिन्होंने कहा था

कि जब जब धर्म की ग्लानि होती है, तब तब मैं आता हूँ। वह फिर से पृथ्वी में आये। यह ब्राह्मण युवक जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि सोलह वर्ष की ही अवस्था में उसने सम्पूर्ण ग्रन्थों को पढ़ लिया था, उस अद्भुत प्रतिभाशाली शंकराचार्य का अभ्युदय हुआ। इस सोलह वर्ष के बालक के लेखों को देखकर आधुनिक सभ्य जगत् चकित हो जाता है और वे थे भी अद्भुत पुरुष। उन्होंने संकल्प कर लिया था कि समूचे भारतवर्ष को शुद्ध मार्ग पर लाऊँगा। आप स्वयं देखिये यह काम कितना कठिन था। उस समय भारत की अवस्था जैसी थी, उस सम्बन्ध में आप लोगों को थोड़ा सा बतला ही दिया है। आप लोग जो इन भीषण आचारों के संस्कार के लिये अग्रसर हो रहे हैं, वह उस अध:पतन के युग से चले आ रहे हैं। तातार बलूची आदि भयानक जातियाँ भारत में आकर बौद्ध होकर हम लोगों में मिल गई थीं। वे अपने साथ साथ अपने जातीय आचरण को भी लेते आये थे। इस प्रकार हमारी जातीय जीवन अत्यन्त भयानक पाशविक आचारों का समूह हो गया। उस ब्राह्मण युवक ने बौद्धों से विरासत के रूप में इन्हें ही पाया था और उस समय से आज तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में इस अवनत बौद्ध धर्म पर वेदान्त का पुनर्विजय हो रहा है। अब भी यह कार्य हो रहा है। अब भी इसका अन्त नहीं हुआ है। महा दार्शनिक शङ्कर ने आकर दिखलाया कि

ज्ञानावतार भगवान शङ्कराचार्य

बौद्ध धर्म और वेदान्त के तत्वों में विशेष अन्तर नहीं है। तो भी बुद्धदेव के शिष्य प्रशिष्य अपने आचार्य के उपदेश का आशय न समझ कर आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व का स्वीकार न कर नास्तिक बन गये। शंकर ने यही दिखलाया, उस समय सभी बौद्ध अपने पुराने धर्म को ग्रहण करने लगे। लेकिन वे सब इन अनुष्ठानों के आदी हो गये थे। उनके लिये क्या होगा, यह एक बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई।

रामानुजाचार्य

तब महात्मा रामानुज का अभ्युदय हुआ। शंकर महा मनीषी तो थे, लेकिन जान पड़ता है कि उनका हृदय रामानुज की तरह विशाल न था। रामानुज का हृदय शंकर से अधिक विस्तृत था। पतितों के दुःख से उनका हृदय काँप उठा। वह उनके दुःख को पूर्ण रूप से अनुभव करने लगे। उस समय जो नये नये अनुष्ठान प्रचलित हो गये, उन्हें लेकर यथा-साध्य उनमें संशोधन किया और नये नये अनुष्ठान, नयी नयी उपासना की रीति चलाई और जो अत्यावश्यक थी, उनके लिये उपदेश देने लगे। साथ ही उन्होंने ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सब के लिये आध्यात्मिक उपासना का रास्ता खोल दिया। इस तरह रामानुज का कार्य चल निकला। उनके कार्य का प्रभाव चारों तरफ़ फैलने लगा। भारत में उसकी लहर सी आगई। उस समय कई एक आचार्य अनुप्राणित होकर कार्य करने लगे। किन्तु इसके कुछ दिनों बाद मुसलमानो शासन आरम्भ हुआ। इस

समय के आचार्यों में चैतन्य ही सर्वश्रेष्ठ हैं। रामानुज के समय से धर्म-प्रचार की एक विशेषता लक्ष्य करने योग्य है—वह यह है कि उस समय से सर्व साधारण के लिये धर्म का द्वार खोल दिया गया। शंकर के पूर्ववर्ती आचार्यों का जिस प्रकार यह मूल मन्त्र था वैसे ही रामानुज के बाद के आचार्यों का भी यह मूल मन्त्र हुआ। मैं नहीं जानता लोग शंकर को अनुदार मतावलम्बी क्यों कर कहते हैं। मैं उनके लिखे हुए ग्रन्थों में ऐसी कोई बात नहीं पाता जिससे उनकी संकीर्णता का परिचय पाया जाय। भगवान बुद्ध के उपदेश जिस प्रकार उनके शिष्यों तथा अनुचारियों द्वारा विकृत हुए थे, वैसे ही शंकराचार्य के उपदेशों पर जो संकीर्णता का दोषारोपण किया जाता है, उसमें सम्भवतः शंकराचार्य का कोई दोष नहीं है, उनके शिष्यों के समझने की असमर्थता से ही यह दोष सम्भवतः शंकर पर लगाया जाता है।

अब मैं आर्यावर्त-निवासी भगवान् चैतन्य के विषय में कुछ कह कर अपनी वक्तृता को समाप्त करूँगा। वह गोपियों के प्रेमोन्मत्त भाव के आदर्श थे। चैतन्य देव स्वयं ब्राह्मण थे। उस समय के एक बड़े पंडित घराने में उनका जन्म हुआ था। वह न्याय के अध्यापक होकर वाग्युद्ध में लोगों को परास्त करते थे, इसी से लड़कपन से ही उन्हें शिक्षा मिली थी। किसी महापुरुष की कृपा से इस व्यक्ति का सारा जीवन बदल गया। उस समय वह वाद-विवाद, तर्क-वितर्क, न्याय का अध्यापन सब कुछ

प्रेमावतार भगवान चैतन्य

छोड़ बैठे। संसार में जो बड़े बड़े भक्ति के आचार्य हुए हैं, यह प्रेमोन्मत्त चैतन्य ही उनमें श्रेष्ठ हैं। उनका भक्ति-तरंग सारे बंगाल प्रान्त में बह निकला; सब के हृदय को शान्ति प्रदान किया। उनके प्रेम की सीमा न थी। साधु, पापी, हिन्दू, मुसलमान, पवित्र, अपवित्र, वेश्या, पतित सभी उनके प्रेम के भागी थे। सभी पर वह दया करते थे और यद्यपि उनका चलाया सम्प्रदाय अवनति को प्राप्त होगया है, जैसा काल के प्रभाव से सभी अवनति को प्राप्त होते हैं, तौ भी आज तक वह दरिद्र, दुर्बल, जातिच्युत, पतित, समाज में जिसके लिये कोई स्थान नहीं, ऐसे सभी व्यक्तियों के लिये आश्रय-दाता है। लेकिन मुझे सत्य के अनुरोध से यह मानना पड़ेगा कि दार्शनिक सम्प्रदायों में हम अद्भुत उदार भाव को देखते हैं। शंकराचार्य के मतवाले कोई इस बात को स्वीकार नहीं करेंगे कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायों में वास्तव में क्या भेद है। वे जाति-भेद के सम्बन्ध में अत्यन्त संकीर्णता के समर्थक रहे हैं। प्रत्येक वैष्णव आचार्य के भीतर हम लोग जाति-भेद के सम्बन्ध में अद्भुत उदारता देखते हैं, लेकिन धर्म के सम्बन्ध में उनका मत बहुत संकीर्ण है।

एक महात्मा तो अद्भुत मस्तिष्क वाले थे, दूसरे विशाल हृदय वाले, इस समय एक ऐसे व्यक्ति का जन्म हुआ जिनमें एक साथ ही हृदय और मस्तिष्क दोनों था, जिन्होंने शंकर का

ज्ञान भक्ति के समन्वय भगवान श्री रामकृष्ण परमहंस

अद्भुत मस्तिष्क और चैतन्य का अपूर्व विशाल हृदय पाया था। जिन्होंने देखा कि सभी सम्प्रदाय में एक आत्मा है, एक ईश्वर की शक्ति से अनुप्राणित है और प्रत्येक प्राणी में वही ईश्वर विद्यमान है। जिनका हृदय भारत से भीतर वा बाहर दरिद्र, दुर्बल, पतित सब के लिये रो उठा, जिनकी विशाल बुद्धि इतने महत् तत्वों को खोज निकालने में समर्थ थी जिनको काय रूप में लाने से भारत के भीतर वा बाहर सभी विरोधी सम्प्रदायों का समन्वय होगा और इस प्रकार अद्भुत समन्वय करके हृदय और मस्तिष्क की उन्नति करने वाले सार्वभौम धर्म का प्रकाश होगा। ऐसे व्यक्ति ने हाल में जन्म लिया था, जिनके चरण तले बैठ कर कई वर्षों तक मैंने शिक्षा पाई है। इसी तरह के एक व्यक्ति के जन्म लेने का एक समय हुआ था, प्रयोजन हुआ था। और विचित्र बात यह है कि उनके जीवन का कार्य-क्षेत्र एक ऐसे शहर के पास था, जो पाश्चात्य भावों से बिल्कुल रङ्गा हुआ था, जो शहर भारत के दूसरे शहरों से अधिक साहबी ठाट से रहता था। उनकी किताबी शिक्षा नाम मात्र को भी न थी, इतने बड़े महात्मा के होते हुए भी वह अपना नाम तक नहीं लिख सकते थे, लेकिन हम में से प्रत्येक, जो विश्वविद्यालय के बड़े बड़े डिग्री धारी हैं, उन्हें बड़ा भारी महात्मा समझते थे। वह एक अद्भुत पुरुष थे। उन के सम्बन्ध की बहुत सी बातें कहने को हैं, लेकिन अब आज

समय नहीं रहा। इसलिये मुझे भारतीय सभी महापुरुषों के पूर्ण प्रकाश रूप युगाचार्य महात्मा श्री रामकृष्ण के नाम मात्र ही का उल्लेख कर आज चुप लगाना पड़ता है जिनका उपदेश आज कल हम लोगों के लिये विशेष उपयोगी है। इस महापुरुष के भीतर जो दैवी शक्ति विराजमान थी, उसके प्रति लक्ष्य कीजिये। वह दरिद्र ब्राह्मण सन्तान था, बङ्गाल में शहर से दूर एक मामूली गाँव में उसका जन्म हुआ था। आज योरप और अमेरिका में हजारों व्यक्ति सचमुच फूल चन्दन से उसकी पूजा करते हैं और आगे भी हजारों लोग उसकी पूजा करेंगे। ईश्वरेच्छा कौन समझ सकता है? हे भाइयो, अगर आप इसमें विधाता का हाथ नहीं देखते हैं तो आप अंधे हैं; अवश्य ही जन्मांध हैं। अगर समय मिला और आप लोगों के साथ विचार करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ तो मैं आप लोगों को इस सम्बन्ध में और कहूँगा। इस समय केवल यही कहना चाहता हूँ कि यदि मैं अपने जीवन में एक भी बात सच कहना चाहता हूँ, तो वह उनका है, उन्हीं का कहा हुआ है और अगर ऐसी बात कहूँ जो झूठी और भ्रमात्मक है, जो मनुष्य जाति के लिये कल्याणकर नहीं है, तो वह सब मेरा है, उन सब के लिये मैं ही जिम्मेदार हूँ।

* अब हमें क्या करना है ?

जीवन समस्या की सार्वभौमिक मीमांसा

संसार ज्यों ज्यों अग्रसर होता जाता है, त्यों त्यों जीवन-समस्या गंभीर और जटिल होती जाती है। प्राचीन काल में जिस समय संसार भर में वेदान्त का सत्य रूप पहले पहल आविष्कृत हुआ उसी समय से उन्नति के मूल मंत्र और सार तत्व प्रचारित हो रहे हैं। सारे संसार को अपने साथ लिये बिना संसार का एक परिमाणु भी नहीं चल सकता। सम्पूर्ण जगत को साथ साथ उन्नति के मार्ग में अग्रसर न करने से संसार के किसी भी स्थान में किसी तरह की उन्नति नहीं हो सकती। प्रतिदिन बिल्कुल स्पष्ट दिखलाई पड़ता है कि केवल जातीय या किसी संकीर्ण भित्ति के ऊपर निर्भर करके किसी समस्या की मीमांसा नहीं हो सकती। चाहे कोई भी विषय वा भाव होवे, उसे उदार से उदार बनना पड़ेगा, जब तक कि वह सार्वभौम न हो जाय। चाहे कोई भी आकांक्षा

---

* यह भाषण ट्रिप्लीकेन की साहित्य समिति में दिया गया था। इसी समिति के उद्योग से स्वामी जी चिकागो की धर्म महासभा में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि बनकर गये थे।

हो उसे क्रमशः इतना बढ़ाना पड़ेगा, जिससे वह समस्त प्राणी जगत् को अपनी सीमा के अन्दर कर लेवे।

इससे जान पड़ेगा कि प्राचीन काल में हमारा देश जो महत्व के पद पर आसीन था, गत कई शताब्दियों से वह उस पद पर नहीं है। और यदि हम लोग इसका कारण ढूँढ़ना चाहें कि यह अवनति किस प्रकार हुई तो हमें मालूम होगा कि हमारी दृष्टि की संकीर्णता, हमारे कार्य क्षेत्र का संकोच ही इसका मूल कारण है।

संसार में दो आश्चर्यजनक जातियाँ हुई हैं। एक मूल जाति से उत्पन्न, किन्तु विभिन्न देशकाल के घटनाचक्र में स्थापित, दूसरी अपनी निजी निर्दिष्ट मार्ग में जीवन-समस्या के समाधान में लीन, ये दो जातियाँ प्राचीन हैं। मैं

ग्रीक और हिन्दू

प्राचीन हिन्दू और प्राचीन ग्रीक जाति की बात कह रहा हूँ। उत्तर में हिमालय के बर्फीली चोटियों से घिरे स्थानों, घने बनों और पुण्य सलिला नदियों के तट पर भारतीय आर्यों का मन सहज ही अन्तर्मुखी हुआ। आर्य जाति स्वभावतः अन्तर्मुखी थी, दूसरे चारों तरफ जो भावोद्दीपक दृश्य थे, उनसे उनके सूक्ष्म भावों को ग्रहण करने वाला मस्तिष्क स्वभावतः अन्तरस्तत्वानुसंधान-परायण हुआ, अपने चित्त का विश्लेषण करना भारतीय आर्यों का प्रधान लक्ष्य हुआ। दूसरी ओर ग्रीक जाति एक ऐसे स्थान में निवास करती थी, जहाँ पर गम्भीरता की अपेक्षा सौन्दर्य का अधिक समावेश

है; ग्रीक द्वीप-समूह के छोटे छोटे द्वीप मानो हँसते रहते हैं, इसी से उनके निवासियों का मन सहज ही वहिर्मुख हुआ, वह वाह्य जगत के विश्लेषण में संलग्न हुआ, उसके फलस्वरूप हम देखते हैं कि भारत से सब तरह के विश्लेषणात्मक और ग्रीस से श्रेणी विभागात्मक विज्ञान की उत्पत्ति हुई।

हिन्दूपन ने अपने विशिष्ट मार्ग से चलकर अत्यन्त अद्भुत फल उत्पन्न किया। इस समय भी हिन्दुओं की जैसी विचार-शक्ति है, भारतीय मस्तिष्क अब भी जिस प्रकार की शक्ति का आधार है, उसके साथ और किसी भी जाति की तुलना नहीं हो सकती। हम सभी लोग जानते हैं कि हमारे देश के बच्चे और देशों के बच्चों के साथ प्रतियोगिता करने पर बढ़ जाते हैं लेकिन तो भी जिस समय, संभवतः मुसलमानों के भारत-विजय के दो एक शताब्दी पहले, जातीय शक्ति का लोप हुआ, उस समय इस जातीय विशेषता को लेकर इतनी चढ़ा-ऊपरी हुई कि वह अवनति दशा को प्राप्त हो गई। और हमारे भारतीय शिल्प, संगीत, विज्ञान सभी विषयों में इस अवनति के कुछ कुछ चिन्ह दिखलाई पड़ते हैं। शिल्प में वह उदार धारणा न रह गयी, न भावों की उच्चता और विभिन्न अंगों के सामंजस्य की चेष्टा ही रह गई। सभी बातों में केवल दिखावट और बनावट आगई, सारी जाति की मौलिकता ही मानो नष्ट हो

मुसलमानों के भारत पर विजय पाने के पहले ही हिंदू जाति की अवनति

गई। प्राचीन संस्कृत संगीत में हृदय को उन्मत्त बनाने वाला गंभीर भाव न रह गया। पहले जिस प्रकार प्रत्येक सुर स्वतंत्र रूप में अपने पाँव पर खड़ा रहता, और अपूर्व ऐक्य तान की सृष्टि करता, वह बात अब न रह गई, सम्पूर्ण सुरों की मानों स्वतंत्रता ही जाती रही। हमारा आधुनिक संगीत अनेक ताल-सुरों की खिचड़ी सा हो गया है। यही संगीत शास्त्र की अवनति का चिन्ह है। भावराज्य सम्बन्धी अन्यान्य विषयों का विश्लेषण करने पर इस तरह की अलंकार-प्रियता की अधिकता और मौलिकता का अभाव आपको दिखलाई पड़ेगा। इसी प्रकार धर्म में भी अवनति घर कर गई। जो जाति शताब्दियों से एक ग्लास पानी दाहने से पीना चाहिये, या बायें हाथ से, इस समस्या को हल करने में व्यस्त है, वह जाति कितनी अवनति अवस्था को पहुँच गई, इसे क्या बतलाना पड़ेगा। वेदान्त के तत्व-समूह, जगत में प्रचलित ईश्वर और आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्तों के बीच महान् और उज्ज्वल सिद्धान्त नष्ट प्राय हो गये, घने बनों में कुछ सन्यासी साधुओं ने उसे छिपा रखा, बाकी और लोग खान-पान, छुआछूत के पचड़े में पड़े रहे। मुसलमान लोगों ने भारत को जीतकर, जो कुछ वे जानते थे, ऐसे अनेक विषयों को उन्हें सिखाया। क्योंकि संसार में हीन से हीन मनुष्य भी श्रेष्ठ मनुष्यों को कुछ न कुछ सिखा ही सकता है। किन्तु वे हमारी जाति के भीतर शक्ति का संचार न सके।

अन्त में हमारे भाग्य से हो, चाहे दुर्भाग्य से हो, अंग्रेजों ने

हिन्दुस्तान को जीता। यह ठीक है कि दूसरे देश पर विजय प्राप्त करने का परिणाम अच्छा नहीं होता, विदेशी शासन कभी कल्याणकर नहीं होता, तो भी कभी कभी बुराई के बीच भी भलाई निकल ही आती है। इंगलैंड और सारा योरप सभ्यता के लिये ग्रीस का ऋणी है। योरप के सभी भावों के बीच मानो ग्रीस की ही प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है।

अंग्रेजों द्वारा भारत-विजय का शुभ फल

उसके घर घर में, घर के हर एक असबाब तक में मानो ग्रीस की ही छाप पड़ी होती है। योरप का विज्ञान, शिल्प सभी ग्रीस की छाया मात्र है। आज भारत में वह प्राचीन ग्रीक और प्राचीन हिन्दू एकत्र मिल गये हैं। इस प्रकार धीरे धीरे चुपचाप एक प्रकार का परिवर्तन हो रहा है। और हम लोग चारों तरफ़ जो उदार जीवनप्रद जागृति का आन्दोलन देख रहे हैं, वह इन सभी भिन्न भिन्न भावों के एकत्र मिश्रित होने का परिणाम है। हमारी मनुष्य जीवन सम्बन्धी धारणायें और भी प्रशस्त होती जाती हैं। हम लोग उदारता के साथ सहृदयता और सहानुभूति के साथ मनुष्य-जीवन की समस्याओं की ओर दृष्टि डालना सीख रहे हैं और यद्यपि पहले हम लोगों ने भूल में पड़ कर अपने भावों को कुछ संकीर्ण करने का प्रयत्न किया था, किन्तु अब हम लोग समझ गये हैं कि चारों तरफ़ जो सहृदयता-पूर्ण भाव दिखलाई पड़ते हैं, वे हमारे प्राचीन शास्त्रों में लिखे उपदेशों के स्वाभाविक परिणति स्वरूप हैं। हमारे पूर्वजों

ने अत्यन्त प्राचीन काल में जिन तत्वों का आविष्कार किया था, वे ही भाव यदि ठीक ठीक कार्य-रूप में परिणत किये जाँय तो हम लोग उदार हुए बिना न रहेंगे। हमारे शास्त्रों में बतलाये हुए सभी विषयों का लक्ष्य है—स्वयं क्षुद्र वस्तु से उत्पन्न होकर सभी के साथ मिलते हुए परस्पर में भाव अदान-प्रदान कर उदार से भी उदार होना—क्रमशः सार्वभौमिक रूप ग्रहण करना। किन्तु हम लोग शास्त्रों का उपदेश न मान कर अपने को अधिक से अधिक संकीर्ण बना रहे हैं, अपने को सुखा रहे हैं। हम लोगों की उन्नति के मार्ग में कितने ही विघ्न हैं, उनमें हम लोग संसार में सर्वश्रेष्ठ जाति हैं, यह भी है। मैं भारत को प्राणों से अधिक प्यार करता हूँ, देश की भलाई के लिये मैं सदा कमर कसे रहता हूँ, मैं अपने पुरुखों पर विशेष श्रद्धा भक्ति रखता हूँ तौ भी संसार से हम लोगों को बहुत सी बातें सीखनी हैं, इस धारणा का त्याग करने में मैं असमर्थ हूँ। हम लोगों को शिक्षा ग्रहण करने के लिये सभी के पैरों तले सदा बैठने को तैयार रहना होगा। इसका कारण यह है कि इस बात पर हम लोगों को विशेष ध्यान रखना चाहिये कि सभी हम लोगों को बड़ी से बड़ी शिक्षा दे सकते हैं। सर्वश्रेष्ठ स्मृतिकार मनु जी ने लिखा है:—

श्रद्दधानं शुभां विद्यामाददीता वरादपि।
अन्त्यदपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।

अर्थात् श्रद्धावान होकर नीच जाति से भी हितकर विद्या ग्रहण करना चाहिये, और नीच जाति से भी धर्म की शिक्षा ग्रहण

करना चाहिये, और नीच कुल से भी स्त्री रत्न को ग्रहण करना उचित है।

अतः यदि हम लोग मनु महाराज की योग्य सन्तान हैं तो उनका आदेश हम लोगों को अवश्य पालन करना चाहिये। जो कोई भी व्यक्ति हम लोगों को शिक्षा देने में समर्थ हो, उस से लौकिक वा पारलौकिक विषयों की शिक्षा ग्रहण करने को तैयार रहना होगा।

दूसरी ओर हम लोगों को भुला देने से भी काम नहीं चल सकता; हम लोगों को संसार को भी कुछ सिखलाना है, भारत के अतिरिक्त और देशों से सम्बन्ध रखे बिना नहीं चल सकता। हम लोगों ने एक समय सोचा था, वह हम लोगों की मूर्खता थी, और उसी के दण्ड स्वरूप आज हजार वर्ष से दासता की जंजीरों से जकड़े हुए हैं। हम लोग दूसरी दूसरी जातियों के साथ अपनी तुलना करने के लिये बाहर नहीं जाते; हम लोग जगत की गति को देख कर चलना नहीं सीखते, यही भारत-वासियों के मन की अवनति का एक प्रधान कारण है। हम लोग काफ़ी सज़ा भुगत चुके हैं, अब और भ्रम में पड़ने की ज़रूरत नहीं। भारतवासियों को विदेश जाना अनुचित है, यह कहना मूर्खता और लड़कपन है। इस प्रकार की धारणाओं को निर्मूल करना होगा। तुम लोग जितना ही भारत से बाहर दूसरे दूसरे

विदेशों में धर्म-प्रचार और विदेशियों के साथ मिलना आवश्यक कर्तव्य है।

मुल्कों में भ्रमण करोगे, दूसरी दूसरी जातियों से मिलोगे, उतना ही तुम्हारा और तुम्हारे देश का कल्याण होगा। तुम लोग शताब्दियों पहले ही से यह करते होते तो आज जो कोई जाति तुम्हारे ऊपर अधिकार करना चाह रही है, उसके सामने झुकना न पड़ता। जीवन का पहला चिन्ह है विस्तार। अगर तुम लोग जिन्दा रहना चाहते हो, तो तुम लोगों को संकीर्णता छोड़ देनी पड़ेगी। जिस क्षण तुम लोगों का विस्तार बन्द हो जायगा, उसी क्षण से समझ लेना चाहिये, कि मृत्यु तुम्हारे सिर पर मड़रा रही है, विपत्ति तुम्हारे सामने है। मैं योरप और अमेरिका में गया था, आप लोगों ने भी उदारता के साथ इसका उल्लेख किया है। मुझे वहाँ पर इसी से जाना पड़ा था कि विस्तार ही जातीय अभ्युदय का पहला चिन्ह है। इस अभ्युदयशील जातीय जीवन ने भीतर ही भीतर विस्तार प्राप्त करके मुझे मानो दूर फेंक दिया था; हजारों आदमियों को इसी तरह दूर दूर की यात्रा करनी पड़ेगी। मेरी बात को ध्यान देकर सुनो। अगर इस जाति को जीवित रखना है, तो ऐसा करना ही पड़ेगा। इसलिये यह विस्तार जातीय जीवन के पुनरुभ्युदय का मुख्य लक्षण है और इसी विस्तार के साथ मनुष्य की समग्र ज्ञान समष्टि को जो कुछ देना है, सारे संसार की उन्नति के लिये हम लोगों को जो कुछ भी देना है, वह भी भारत के अतिरिक्त और देशों में जा रहा है।

और यह कोई बात नहीं है। तुम लोगों में जो यह ख्याल

विदेश-यात्रा हिंदुओं के लिये कोई नयी बात नहीं।

करते हों कि हिन्दू लोग सदा से अपने देश की चहारदिवारी में बन्द रहे हैं, वे बिल्कुल ग़ल्ती में हैं। तुम लोगों ने अभी अपने शास्त्रों को पढ़ा नहीं है, और न अपने जातीय इतिहास का ही अध्ययन किया है। चाहे जो कोई जाति हो, उसे जीवित रहने के लिये कुछ देना होगा। प्राण देने पर प्राण मिलेगा। दान लेने पर उसके मूल्य स्वरूप सब को कुछ न कुछ देना होगा। इतने दिनों से हम लोग जीवित हैं—इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। इस समय तक हम लोग किस तरह जीवित रहे हैं, यदि इस समस्या का समाधान करना हो, तो यह स्वीकार करना होगा कि चाहे मूर्ख लोग कुछ ख्याल करें पर हम लोग चिरकाल से संसार को कुछ न कुछ देते आये हैं।

भारत का दान धर्म-दान है

भारत का दान है धर्म, दार्शनिक ज्ञान, आध्यात्मिकता। धर्म-ज्ञान को फैलाने, धर्म-प्रचार के रास्ते को साफ़ करने के लिये सेना की आवश्यकता नहीं होती। ज्ञान और दार्शनिक तत्व को दूसरों का खून बहा कर नहीं फैलाया जा सकता। ज्ञान और दार्शनिक तत्व रक्त से सने हुए मनुष्यों की देह पर से नहीं जा सकते। यह शान्ति और प्रेम के भावों से पूर्ण हो आगमन करते हैं। और सदा से यही होता आया है। इसलिये यह देखा गया है कि भारत को भी सदा संसार को कुछ

न कुछ देना पड़ा है। लंडन की एक युवती ने मुझसे एक बार पूछा था, "हिन्दुओं ने क्या किया है? तुम लोगों ने कभी एक जाति को भी नहीं जीता!" अंग्रेज जाति के लिये, जो साहसी वीर, क्षत्रिय प्रकृति के हैं, दूसरे को विजय करना गौरव की बात समझी जाती है। यद्यपि उनकी दृष्टि से यही ठीक है लेकिन हम लोगों की दृष्टि बिल्कुल इसके विपरीत है। जब मैं अपने मन से पूछता हूँ कि भारत की श्रेष्ठता का कारण क्या है, तो यह उत्तर पाता हूँ कि इसका कारण यह है कि हम लोगों ने कभी दूसरी जाति को जीता नहीं। यही हम लोगों के लिये अत्यन्त गौरव की बात है। आप लोग आज-कल सदा ही इस बात की निन्दा सुनते आ रहे हैं कि हम लोगों का धर्म दूसरों के धर्म को विजय करने में समर्थ नहीं रहा है और मैं दुःख के साथ कहता हूँ कि यह बातें ऐसे लोगों के मुँह से सुनने में आती हैं जिनसे अधिक ज्ञान की आशा की जाती है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि हम लोगों का धर्म जो और दूसरे धर्मों से सत्य से अधिक निकट है, यही उसकी एक प्रधान युक्ति है। हम लोगों का धर्म कभी दूसरे धर्म को विजय करने में प्रवृत्त नहीं होता, यह कभी दूसरों का खून नहीं बहाता। इसने सदा ही आशीर्वाणी और शान्ति वाक्य का उच्चारण किया है, सबसे प्रेम और सहानुभूति की बातें कही हैं। यहीं पर—

हिन्दुओं ने चुपचाप
शान्तभाव से उसे
दान किया है

केवल यहीं पर—दूसरे धर्मों के प्रति द्वेष भाव न रखने के भाव की पहले-पहल शिक्षा दी गई। केवल यहीं पर दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सहानुभूति का भाव कार्यरूप में परिणत हुआ है। दूसरे देशों में यह केवल मतवाद के ही रूप में रहा है। केवल यहीं पर हिन्दू लोग मुसलमानों के लिये मस्जिद और ईसाइयों के लिये गिर्जाघर बनवाते हैं। इसलिये हे सज्जनो, आप लोग समझ गये होंगे कि हम लोगों ने अपने भावों को संसार में कई बार फैलाया है लेकिन बहुत धीरे और अज्ञात-भाव से। भारत सभी बातों में ऐसा ही करता रहा है। भारतीय चिन्तना का एक लक्षण उसका शान्तभाव, उसकी नीरवता है। उसके पीछे जो प्रबल शक्ति रही है, उसे बल-वाचक शब्दों से नहीं कहा जा सकता। उसे भारतीय चिन्ताराशि की शान्त मोहिनी शक्ति कही जा सकती है। जब कोई विदेशी हम लोगों के साहित्य का अध्ययन करने में प्रवृत्त होता है तो पहले वह उसे अच्छा नहीं लगता। उसमें उसके साहित्य की तरह उद्दीपना अथवा तीव्र गति नहीं दिखलाई पड़ती जिससे शीघ्र ही वह मस्त हो जाय। योरप के वियोगान्त नाटकों के साथ हम लोगों के नाटकों की तुलना कीजिये। पाश्चात्य नाटक घटना-वैचित्र्य-पूर्ण होते हैं! वे क्षण भर के लिये सब को उत्तेजना से भर देते हैं, लेकिन ज्योंही वे समाप्त हो जाते हैं, शीघ्र ही प्रतिक्रिया होती है, सभी दिमाग़ से चला जाता है। भारतीय वियोगान्त नाटक मानो जादू की तरह धीरे से चुपके से असर करते हैं। लेकिन

एक बार पढ़ना आरम्भ करने पर उनका प्रभाव तुम्हारे ऊपर होने लगता है, तुम बचकर कहाँ जा सकते हो? और जिस व्यक्ति ने हम लोगों के साहित्य को स्पर्श करने का साहस किया है उसी ने उसके बन्धन का अनुभव किया है। वही उसके प्रेम बन्धन में पड़ गया है।

जिस तरह ओस की बूँदे अदृश्य भाव से पड़ने पर भी सुन्दर गुलाब की कली को खिलाती है उसी तरह से सम्पूर्ण संसार की चिन्ताराशि भारत के प्रति ऋणी हैं। अज्ञात रूप से, शान्त भाव से और अदम्य महाशक्ति के बल पर उसने सम्पूर्ण संसार के विचारों में युगान्तर उपस्थित कर दिया है। तो भी कोई नहीं जानता कि कब ऐसा हुआ। एक बार किसी ने मुझसे बातचीत के सिल-

भारतीय ग्रन्थकार अज्ञातनामा हैं

सिले में कहा था कि 'किसी भारतीय ग्रन्थकार के नाम का पता चलाना कितना कठिन काम हैं।' इसका मैं उत्तर देता हूं कि यही भारत का भाव संगत है। वे आजकल के ग्रन्थकारों की तरह न थे, जो दूसरे ग्रन्थों से ६० फी सदी चोरी करते हैं, सौ में केवल दस फी सदी उनका होता है, लेकिन वे ग्रन्थ के प्रारम्भ में एक भूमिका लिखकर पाठकों से यह कहना नहीं भूलते कि 'इस मत का मैं ही उत्तरदायी हूँ।' जो महा मनीषि मानव जाति के हृदय में गम्भीर तत्वों के भाव भर गये हैं, वे ग्रन्थ लिखकर ही सन्तुष्ट रहते थे, ग्रन्थों में

अपने नाम तक नहीं देते थे, वे समाज को अपने ग्रन्थों का उपहार देकर चुपचाप मर गये। हम लोगों के दर्शनकारों तथा पुराण लिखने वालों का नाम कौन जानता है? वे सभी व्यास कपिल आदि उपाधियों से परिचित हैं। वे ही श्रीकृष्ण के प्रकृत संतान हैं। उन्होंने ही गीता का यथार्थ अनुसरण किया है। वे ही अपने जीवन में श्रीकृष्ण के इस महान् उपदेश का पालन कर गये हैं:—

कर्मण्ये वाधिकारास्ते मा फलेषु कदाचन। २। ४२

कर्म करने ही का तुझे अधिकार है, फल का कभी अधिकार नहीं है।

सज्जनो, भारत इस प्रकार सम्पूर्ण संसार से बढ़कर कार्य करता है। तो भी इसमें एक बात की कमी है। वाणिज्य वस्तुयें जिस प्रकार किसी व्यक्ति विशेष के बनाये रास्ते से ही एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकती हैं, वही बात भावों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। भाव राशि के एक देश से दूसरे देश को जाने के लिये उसके जाने का रास्ता तैयार करना आवश्यक है, जगत के इतिहास में जब कभी किसी दिग्विजयी जाति ने उठ कर संसार के भिन्न भिन्न देशों को एक सूत्र में बाँध दिया है, उस समय उसी मार्ग से भारत की विचार धारा बही है और प्रत्येक जाति की नस नस में प्रवेश कर गई है।

विदेशियों का विजय आने जाने की सुविधा करके भारत के धर्म-विस्तार में सहायक है।

ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते हैं, त्यों त्यों इस बात के लिये प्रमाण मिलते जाते हैं कि बौद्ध मत के उत्पन्न होने के पहले भी भारतीय भाव सम्पूर्ण संसार में फैले हुए थे। बौद्ध धर्म के अभ्युदय के पहले ही वेदान्त ने चीन, फारस और पूर्वी द्वीप समूहों में प्रवेश किया था। फिर जब महान् ग्रीक शक्ति ने सम्पूर्ण पूर्वी देशों को एक सूत्र में बाँधा तो फिर भारतीय भाव की धारा प्रवाहित हुई थी। ईसाई मत ने भी, जो अपनी सभ्यता के लिये इतना गर्व करता है, भारतीय भावों से लाभ उठाया है। हम लोग उसी धर्म के उपासक हैं। बौद्ध धर्म (अपने इतने महत्व के होते हुए भी) जिसकी विद्रोही सन्तान है और ईसाई मजहब जिसका अत्यन्त नगण्य अनुकरण मात्र है। अब फिर युगचक्र फिरा है, फिर वैसा ही समय आया है। इंग्लैंड ने अपनी प्रबल शक्ति से संसार के भिन्न भिन्न भागों को एक में मिलाया है। रोमनों की तरह अंग्रेजों का रास्ता सिर्फ स्थल मार्ग ही में नहीं, बल्कि अतल समुद्र के प्रत्येक अंश की ओर गया है। इंग्लैंड के यान एक समुद्र से दूसरे समुद्र को जाते हैं। संसार का एक भाग अन्य भागों से मिल गया है और बिजली की शक्ति इनका काम कर रही है। इस तरह की अनुकूल अवस्था को पाकर भारत फिर से जग रहा है, और संसार की उन्नति और सभ्यता जो कुछ दे सकती है, देने को तैयार है। इसके फल-स्वरू .कृति ने मानो मुझ पर दबाव डालकर मुझे इंग्लैंड और अमेरिका धर्म-प्रचार के लिये भेजा था। हम में से प्रत्येक को आशा करना

उचित ही था कि इसके लिये समय आ गया है। सभी तरफ़
शुभ लक्षण दिखलाई पड़ रहे हैं और भारतीय दर्शन और
आध्यात्मिक विचार जाकर सारे विश्व को विजय करेंगे। इस
प्रकार हमारी जीवन समस्या क्रमशः बड़ा आकार धारण कर
रही है। हम लोगों को सिर्फ अपने ही देश को नहीं जगाना
है, यह तो बिल्कुल साधारण बात है। मैं एक कल्पना-प्रिय भावुक
व्यक्ति हूँ, मेरी यह धारणा है कि हिन्दू जाति सारे संसार
पर विजय प्राप्त करेगी।

संसार में बहुत सी बड़ी बड़ी दिग्विजयी जातियाँ हो गई
हैं। हम लोग भी सदा दिग्विजयी रहे हैं। हम लोगों के दिग्वि-
जय के उपाख्यान में भारत के उस महान् सम्राट अशोक के
धर्म और आध्यात्मिकता के दिग्विजय का
विदेशों में धर्म-प्रचार के वर्णन किया गया है। फिर भारत को
द्वारा ही देश के कल्याण संसार पर विजय प्राप्त करना होगा।
की सम्भावना है यही मेरे जीवन का स्वप्न है, जो मेरी
बात को सुन रहे हैं उन सब के मन में
यह कल्पना जागृत हो। और जब तक तुम इसे कार्य रूप में
परिणत नहीं कर सकते, तब तक दम न लेना चाहिये। लोग
तुमसे रोज कहेंगे कि पहले अपना घर तो सँभालो, फिर विदेश
में प्रचार के लिये जाना। लेकिन मैं तुम लोगों को बिल्कुल
स्पष्ट भाषा में कहता हूँ कि जब तुम लोग दूसरों के लिये कार्य
करोगे तभी सर्वोत्तम कार्य कर सकोगे। आज की सभा से यह

प्रमाणित होता है कि तुम्हारे विचारों द्वारा दूसरे देशों में ज्ञानालोक फैलाने की चेष्टा करने से वह किस प्रकार आप ही के लिये सहायक होगा। अगर मैं भारत ही में अपने कार्य-क्षेत्र को सीमाबद्ध रखता तो इंगलैंड और अमेरिका जाने से जो कुछ अच्छा फल हुआ है, उसका एक चौथाई फल भी न होता। यही हम लोगों के सामने एक महान् आदर्श है और प्रत्येक को इसके लिये तैयार रहना पड़ेगा। भारत के द्वारा समस्त संसार को विजय करना होगा, इससे कम न करना पड़ेगा और इसके लिये हम लोगों को तैयार होना पड़ेगा, इसके लिये प्राणों की बाजी लगानी पड़ेगी। विदेशियों ने आकर अपनी सेना भारत भर में फैला दी है, लेकिन कुछ परवाह नहीं, भारत उठो, अपनी आध्यात्मिक शक्ति से संसार को जीत लो। इसी देश में यह बात पहले पहल कही गई थी कि घृणा द्वारा घृणा को नहीं जीता जा सकता, प्रेम के द्वारा विद्वेष को जीता जा सकता है, हम लोगों को यही करना पड़ेगा। जड़वाद और उससे उत्पन्न दुःखों को जड़वाद के द्वारा नहीं जीता जा सकता। जब एक सेना दूसरी सेना को बाहुबल से जीतने का प्रयत्न करती है तो वह मनुष्य जाति को पशु जाति में परिणत कर देती है और क्रमशः पशुओं की संख्या बढ़ाने लगती है। आध्यात्मिकता अवश्य ही पाश्चात्य देशों को जीतेगी। धीरे धीरे वे लोग समझ रहे हैं कि यदि एक जाति के रूप में वे होना चाहते हैं तो उन्हें आध्यात्मिक भाव-सम्पन्न होना पड़ेगा। वे

इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और उत्सुक हैं। वह कहाँ से आयगा? भारत के महर्षियों के भावों को लेकर प्रत्येक देश में जाने वाले लोग कहाँ पर मिलेंगे ? संसार की गली गली में यह कल्याण-कर बात गूँज उठे इसके लिये सर्वस्व त्याग करने को तैयार रहने वाले लोग कहाँ पर मिलेंगे ? सत्य के प्रचार में सहायता करने वाले वीरों की आवश्यकता है। विदेशों में जाकर वेदान्त के इस महान् तत्व का प्रचार करने के लिये वीर हृदय वाले कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है। संसार के लिये इसकी आवश्यकता हुई है, अगर ऐसा न होगा तो संसार का नाश हो जायगा। सारा पाश्चात्य जगत् मानो एक ज्वालामुखी पर्वत के ऊपर स्थित है—कल ही वह पर्वत फूट कर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगा। उन्होंने संसार में सर्वत्र ढूँढ़ कर देखा है; लेकिन कहीं पर ढूँढ़े नहीं मिली है। उन्होंने सुख का प्याला खूब जी भर कर पिया है, किन्तु इससे उन्हें तृप्ति नहीं हुई। हम लोगों के लिये यही कार्य करने का समय है जिससे भारत का आध्यात्मिक भाव पाश्चात्य देशों में खूब फैल जाय। इसलिए हे मद्रास के नौजवानो! मैं तुम लोगों से इसे खूब अच्छी तरह से याद रखने के लिए कह रहा हूँ। हम लोगों को विदेश जाना होगा, आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों द्वारा संसार पर विजय प्राप्त करना होगा, इसके लिये और दूसरा रास्ता नहीं है, यही करना होगा, नहीं तो मृत्यु निश्चित है। एक दिन जो जीवन तेजस्वी था, उसे एक बार फिर तेज पूर्ण करके भारतीय विचारों द्वारा संसार को जीतना होगा।

दूसरी ओर हम लोगों को यह भी भूलने से न चलेगा कि

आध्यात्मिक विचारों द्वारा संसार-विजय

धर्म के मूल तत्वों का करने की जो बात कह रहा हूँ, उससे मेरा प्रचार आवश्यक है लक्ष्य जीवनप्रद तत्वों के प्रचार की

ओर ही है, कई शताब्दियों से हम लोग जिन कुसंस्कारों के अधीन हो रहे हैं, उस ओर मेरा लक्ष्य नहीं है। इन कुसंस्कारों को भारत भूमि से नष्ट कर देना पड़ेगा। जिससे यहाँ पर उनका नामोनिशान न रह जाय। ये जातीय अवनति के कारण स्वरूप हैं, इनसे मस्तिष्क निष्क्रिय हो जाता है। हम लोगों को सावधान होना पड़ेगा जिससे हम लोगों का मस्तिष्क उच्च और महत्वपूर्ण विचारों के लिये अयोग्य न हो जाय, उसकी मौलिकता नष्ट न हो जाय, और न वह निस्तेज ही हो जाय। धर्म के नाम पर सब तरह के छोटे छोटे संस्कारों से मस्तिष्क विषाक्त न हो जाय इसके लिये भी प्रयत्न करना होगा। इस देश में हम लोगों के सिर पर न जाने कितनी विपत्तियाँ मँड़राया करती हैं, उनमें से एक ओर तो घोर जड़-वाद, दूसरी ओर उसके प्रतिक्रियारूप कुसंस्कार, दोनों से ही बचकर हम लोगों को चलना पड़ेगा। एक तरफ तो पाश्चात्य ज्ञान की मदिरा को पीकर मतवाले हुए लोग समझते हैं कि वे सब कुछ जानते हैं। वे लोग प्राचीन काल के ऋषियों और विद्वानों का मज़ाक उड़ाते हैं। उनके लिए हिन्दू जाति के सारे विचार केवल कचड़ा है, हिन्दू दर्शन केवल बच्चों की तुतला-

इट है और हिन्दू धर्म बेवकूफों के कुसंस्कारमात्र है। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी शिक्षित व्यक्ति हैं, जो बिलकुल दूसरे सिरे पर हैं, वे समाज में प्रचलित सभी अन्ध-विश्वासों और कुसंस्कारों में दार्शनिकता और आध्यात्मिकता भिड़ाते हैं। उनके लिए प्रत्येक गाँव में जो कुसंस्कार भरे पड़े हैं, वे वेद वाक्य के समान हैं और उनकी राय में उनके पालन से ही जातीय जीवन निर्भर करता है। आप लोगों को इन दोनों विचारों से सावधान रहना होगा।

ऋषि, गुप्त तत्व और गुप्त-समिति

मैं आप लोगों को घोर नास्तिक देखना पसंद करूँगा। लेकिन कुसंस्कार से भरे मूर्ख देखना न चाहूँगा। क्योंकि नागरिकों में कुछ न कुछ तो जीवन होता है उनके सुधार की तो कुछ आशा है, वे मुर्दे नहीं हैं। लेकिन अगर मस्तिष्क में कुसंस्कार घुस जाता है तो वह बिल्कुल बेकार हो जाता है, दिमाग बिल्कुल फिर जाता है। मृत्यु के कीड़े उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। तुम्हें इन दोनों को परित्याग करना होगा। मैं निर्भीक, साहसी लोगों को चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि लोगों में ताजा खून हो, स्नायुओं में तेजी हो, पेशियाँ लोहे की तरह सख्त हों। मस्तिष्क को बेकार और कमजोर बनाने वाले भावों की आवश्यकता नहीं है। इन्हें छोड़ दो। सब तरह के गुप्त भावों की ओर दृष्टि डालना छोड़ दो। धर्म में कोई गुप्त भाव नहीं, वेदान्त, वेद या पुराणों में क्या

कोई गुप्त भाव है। प्राचीन ऋषियों ने धर्मप्रचार के लिये क्या कहीं पर गुप्त-समिति कायम की थी? उन्होंने अपने आविष्कृत महान् सत्यों को सम्पूर्ण संसार को देने के लिये हाथ की सफ़ाई कौशल आदि का अवलम्बन किया था? क्या इसका कहीं पर उल्लेख पाया जाता है? गुप्त भाव और कुसंस्कार दुर्बलता के चिन्ह हैं वे अवनति और मृत्यु के चिन्ह हैं। इसलिये उनसे सदा सावधान रहो, तेजस्वी बनो और खुद अपने पैरों पर खड़े हो। संस्कार में बहुत सी विचित्रता भरी है। हम लोगों की प्रकृति की धारणा जहाँ तक है, उसके हिसाब से उसे अति प्रकृतिक कहा जा सकता है, लेकिन उसमें कोई गुप्त नहीं है। धर्म का सत्य गुप्त है, और वह हिमालय की चोटी पर गुप्त समितियों की एकमात्र सम्पत्ति है, ऐसी बात भारत में कभी प्रचलित नहीं हुई। मैं हिमालय गया था। 'यह तुम्हारे शहर से सैकड़ों मील दूर है। मैं सन्यासी हूँ गत चौदह वर्षों से पैदल ही चारों तरफ़ घूमता फिरता हूँ। मैं आप से सच सच कहता हूँ कि इस तरह की गुप्त-समिति कहीं पर भी नहीं है। इन सब बुरे संस्कारों के पीछे कभी न दौड़ो। तुम्हारे और तुम्हारी सम्पूर्ण जाति के लिये बल्कि घोर नास्तिक होना अच्छा है, क्यों कि नास्तिक होने से कम से कम तुम में तेज तो रहेगा, किन्तु इस तरह कुसंस्कार-पूर्ण होना अवनति और मृत्यु का कारण है। अन्य बातों में अच्छे मस्तिष्क वाले

सभी बातों की व्याख्या करने की चेष्टा न करो।

लोग इन सब कुसंस्कारों को लेकर अपना समय नष्ट करते हैं, यह सारी मनुष्य जाति के लिये अत्यन्त लज्जा की बात है। तुम साहसी बनो, सब बातों की व्याख्या करने की कोशिश न करो। असल बात यह है कि हम लोगों में बहुत से कुसंस्कार भरे हैं, हम लोगों के शरीर में बहुत से दाग हैं, बहुत से फोड़े हैं इनको हटाना पड़ेगा, काट देना होगा। लेकिन इससे हमारा धर्म, हमारी आध्यात्मिकता, अथवा हमारा जातीय जीवन जरा भी नष्ट न होगा। धर्म के मूल तत्व बिलकुल बेदाग़ रहेंगे और जितना ही ये काले दाग दूर हो जाँयगे, उतने ही मूल तत्व और भी उज्ज्वल, तेजपूर्ण हो जाँयगे। इन तत्वों पर खूब ग़ौर करो।

हिंदू धर्म ही एक मात्र सार्वभौमिक धर्म क्यों है ?

तुमने सुना होगा कि संसार का प्रत्येक धर्म अपने को सार्वभौम धर्म होने का दावा करता है। पहले तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि सम्भवतः कोई भी धर्म किसी काल में सार्वभौम धर्म के रूप में परिणत नहीं हो सकता, लेकिन यदि किसी धर्म को अगर यह दावा करने का अधिकार हो तो हमारा धर्म ही इसका दावा कर सकता है, दूसरा कोई भी धर्म नहीं कर सकता, क्योंकि अन्यान्य धर्म किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्तियों के ऊपर निर्भर करता है। अन्याय सभी धर्म किन्हीं ऐतिहासिक व्यक्ति के जीवन के साथ जड़ित है। वे यह समझते हैं कि

ऐतिहासिकता ही उनके धर्म के प्रामाणिक होने का काफी सबूत है। लेकिन वास्तव में जिसे वे लोग अपने पक्ष में समझते हैं, वही अनेक पक्ष में कमजोरी है, क्योंकि अगर उस व्यक्ति की ऐतिहासिकता सिद्ध नहीं होती तो उसकी धर्मरूपी इमारत ही एक दम नष्ट हो जाती है। इन धर्म-संस्थापकों तथा बड़े बड़े महापुरुषों के जीवन की आधी घटनायें मिथ्या सिद्ध हो चुकी हैं, और बाकी घटना में विशेष रूप से सन्देहास्पद हैं। हम लोगों के धर्म में भी यद्यपि महापुरुषों की काफ़ी संख्या है, लेकिन हम लोगों के धर्म की सत्यता उनकी कही हुई बातों पर निर्भर नहीं करती। 'कृष्ण' 'कृष्ण' के कारण उनका माहात्म्य नहीं है। अगर वह भी इसी तरह के होते तो बुद्ध देव की तरह उनका नाम भी भारत से एक दम लोप हो गया होता।

हिंदू व्यक्ति विशेष के अनुयायी नहीं, धर्म के मूल तत्वों के उपासक हैं

अस्तु। हम लोग सदा से ही किसी व्यक्ति विशेष के अनुयायी नहीं हैं, हम लोग धर्म के तत्वों के उपासक हैं। व्यक्तियाँ उन तत्वों की साकार मूर्ति हैं, उदाहरण स्वरूप हैं। यदि ये तत्व-समूह अविकृत बने रहेंगे, तो सैकड़ों महापुरुष, सैकड़ों बुद्ध देव का अभ्युदय होगा। लेकिन यदि ये तत्व-समूह लोप हो जाँयगे, यदि इन्हें भुला दिया जाय और सारा जातीय जीवन किसी ऐतिहासिक पुरुष का अनुयायी होकर चलने लगे तो उस धर्म की अवनति अनिवार्य

है, उस धर्म पर विपत्ति का आना आवश्यक है। लेकिन हम लोगों का धर्म किसी व्यक्ति विशेष वा व्यक्ति-समूह के जीवन के साथ अविच्छिन्न भाव से जड़ित नहीं है, वह तत्व-समूहों के ऊपर प्रतिष्ठित है। दूसरी तरफ़ उसमें हजारों लाखों अवतारों, महापुरुषों का स्थान हो सकता है। नये अवतार या नये महापुरुष का भी हम लोगों के धर्म में स्थान हो सकता है, लेकिन उनमें से प्रत्येक उन तत्वों का जीवन उदाहरण हो सकता है। यह भूलने से न चलेगा। हम लोगों के धर्म के ये तत्व अविकृत रहे हैं और उन पर काल पाकर मलिनता और धूल न चढ़ने पावे, इसके लिये हम लोगों को जीवन भर प्रयत्न करना पड़ेगा। आश्चर्य की बात है कि हम लोगों की घोर जातीय अवनति होने पर भी वेदान्त के ये तत्व कभी मलिन नहीं हुए। दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति भी उन्हें दूषित करने का साहस नहीं करता। हम लोगों के शास्त्र संसार में अन्यान्य शास्त्रों के साथ तुलना करने पर यह कहना पड़ता है कि उनमें प्रक्षिप्त अंश, मूल में गड़बड़ी अथवा भावों में उलट-फेर नहीं है। पहले जैसे थे, ठीक वैसे ही अब भी हैं और जीवात्मा को उसी आदर्श की ओर परिचालित करते हैं।

भिन्न भिन्न भाष्यकारों ने उनका भाष्य किया है, अनेकों महान् अचार्यों ने उनका प्रचार किया है और तुम्हें यह भी दिखलाई पड़ेगा कि वेदों में ऐसे बहुत से तत्व

भाष्यकारों में वेदों की

हैं, जो ऊपरी तौर पर विरोधी हैं। कितने

व्याख्या में मतभेद एक श्लोक बिल्कुल द्वैतवादात्मक, और कुछ बिल्कुल अद्वैतभाव के द्योतक मिलेंगे। द्वैतवादी भाष्यकार द्वैतवाद को छोड़कर और कुछ नहीं समझते। इसलिये वे अद्वैतवाद के समर्थक श्लोकों को एक दम दबा देना चाहते हैं। अद्वैतवादी भाष्यकार भी द्वैतवादी श्लोकों का ऐसी व्याख्या करते हैं जिससे वे अद्वैतवाद के पक्ष में जान पड़ते हैं। किन्तु इनमें वेदों का दोष नहीं है। सम्पूर्ण वेद ही द्वैतवाद की शिक्षा देते हैं, यह सिद्ध करने का प्रयत्न करना मूर्खता है। वैसे ही वे अद्वैतवाद के समर्थक हैं, यह कहना भी भूल है। वेदों में द्वैतवाद अद्वैतवाद दोनों ही हैं। हम लोग आज कल नये नये भावों के आलोक से इसे अच्छी तरह से समझ रहे हैं। इन सभी भिन्न भिन्न सिद्धान्तों और धारणाओं द्वारा अन्त में इसी अन्तिम सिद्धान्त पर मनुष्य पहुँचता है कि ये सभी बातें मनुष्य के मन के क्रमिक विकास के लिये आवश्यक हैं और इसी से वेदों ने इसके लिये उपदेश दिया है। सारी मनुष्य जाति पर दया का भाव रखते हुए वेदों ने उच्च से उच्च लक्ष्य तक पहुँचने के भिन्न भिन्न सोपानों को दिखलाया है। वे परस्पर विरोधी हैं, सो बात नहीं। वेदों ने बच्चों की तरह भोले भाले लोगों को मुग्ध करने के लिये उन वाक्यों का प्रयोग नहीं किया है।

किन्तु इसकी आवश्यकता है, केवल बालकों के लिये ही नहीं बल्कि बहुत बड़ी उम्र के लोगों के लिये देह बुद्धि रहने की दशा भी। जितने दिन तक हमारा शरीर है,

में सगुण ईश्वर को स्वीकार करना होगा

जितने दिन तक इस शरीर को आत्मा कह कर भ्रम में मनुष्य पड़ा रहता है, जब तक हम लोग पाँचों इन्द्रियों से बद्ध हैं, जब तक हम लोग इस स्थूल जगत को देखते हैं, उतने दिन तक हम लोगों को व्यक्ति विशेष ईश्वर वा सगुण ईश्वर को स्वीकार करना होगा। क्यों कि महात्मा रामानुजाचार्य ने प्रमाणित किया है कि ईश्वर, जीव और जगत इन तीनों में से किसी एक को भी स्वीकार करने पर और दोनों को भी स्वीकार करना होगा। इसलिये जितने दिन तक हम लोग बाह्य जगत को देखते हैं, उतने दिन तक जीवात्मा और ईश्वर को अस्वीकार करना बिल्कुल वितंडावाद मात्र है।

देहादि भावों का लोप होना ही अद्वैतानुश्रुति है

तौ भी महापुरुषों के जीवन में कभी कभी ऐसे भी समय आते हैं जब कि जीवात्मा अपने समस्त बन्धनों को काट देता है, प्रकृति से उस पार चला जाता है और उस सर्वातीत प्रदेश को जाता है जिसके संबंध में श्रुति ने कहा है:—

'यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह।' तै० २।९

'न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनः।' केन १।१।३

'नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।' ऐ० १।२।२

'मन के साथ वाक्य जिसको न पाकर वापस आता है।'
'वहाँ पर नेत्र की पहुँच नहीं है, न वहाँ पर वाणी जा सकती है,

न मन।' मैं उसे जानता हूँ, यह नहीं समझता, उसे जानता नहीं यह भी नहीं समझता।'

तब जीवात्मा सारे बन्धनों से मुक्त हो जाता है, उसी समय उसके हृदय में अद्वैतवाद का मूल तत्व—मैं और सम्पूर्ण जगत एक है, मैं और ब्रह्म एक है—उदय होता है।

और यह सिद्धान्त शुद्ध ज्ञान और दर्शन द्वारा ही प्राप्त हुआ है, सो बात नहीं, हम प्रेम बल से भी उसका बहुत कुछ आभास पा सकते हैं। तुमने भागवत में पढ़ा ही है कि गोपियों के बीच में जब कृष्ण भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये तो उसके विरह में विलाप करते करते उनकी भावना उनके मन में इतनी प्रबल हो उठी कि उनमें से प्रत्येक अपनी देह को भूल गईं, वे अपने ही को श्रीकृष्ण समझ कर उन्हीं की तरह वेश भूषा से सज्जित होकर उनके लीला के अनुकरण में प्रवृत्त हुईं। इस प्रकार यह अच्छी तरह से ज्ञात होता है कि प्रेमबल से भी एकत्व की अनुभूति होती है। फारस के एक पुराने सूफ़ी कवि की कविता का भाव यह है, "मैं अपने प्रेमी के पास गया, जाकर देखा कि उसका दरवाजा बन्द है, मैंने दरवाजे पर खटखटाया, भीतर से आवाज आई, "कौन है?" मैंने उत्तर दिया, "मैं हूँ।" पर दरवाजा न खुला। मैं दुबारा आया, दरवाजे पर धक्का दिया। उसी आवाज ने फिर पूछा, "कौन है?" मैंने जवाब दिया, "मैं अमुक हूँ।" तो भी

प्रेमबल से भी अद्वैतानुभूति सम्भव है

दरवाजा नहीं खुला; तीसरी बार आया, "उसी स्वर ने फिर पूछा, "कौन है ?" तब मैंने उत्तर दिया, "हे प्रियतम, मैं ही तुम हो, तुम ही मैं हूँ ।" तब दरवाजा खुला ।

भिन्न भिन्न धर्मों में ब्रह्मानुभूति के भिन्न उपाय हैं

इसलिये हम लोगों को समझना होगा कि ब्रह्मानुभूति के विभिन्न सोपान हैं, और यद्यपि प्राचीन भाष्यकारों के बीच (जिन्हें हमें श्रद्धा की दृष्टि से देखना उचित है) परस्पर मतभेद है, परन्तु हम लोगों को विवाद करने की कोई जरूरत नहीं । क्योंकि ज्ञान का अन्त नहीं । प्राचीन काल में अथवा वर्तमान समय में कोई भी सर्वज्ञ होने का दावा नहीं कर सकता । यदि प्राचीन काल में बड़े बड़े ऋषि महर्षि हो गये हैं तो निश्चय जानो कि आज कल भी बहुत से ऋषि महर्षि हो सकते हैं । यदि प्राचीन काल में व्यास बाल्मीकि, शंकराचार्य हो गये हैं, तो आप में से प्रत्येक व्यास शंकराचार्य क्यों नहीं हो सकता ? हम लोगों को अपने धर्म की एक विशेषता याद रखनी होगी, अन्यान्य शास्त्रों में आप्त पुरुषों के वाक्य ही शास्त्र के प्रमाण स्वरूप कहे गये हैं, किन्तु इस प्रकार के पुरुषों की संख्या उनके मत से एक दो अथवा बहुत थोड़ी सी हैं । उन्हों ने सर्वसाधारण में इस सत्य का प्रचार किया है, हम सब लोगों को उनकी बातों को मानना चाहिये । ईसा मसीह में सत्य का प्रकाश हुआ था, हम सब लोगों को यह बात माननी होगी, हम और कुछ अधिक नहीं जानते । लेकिन

हम लोगों का धर्म कहता है, कि मंत्रद्रष्टा ऋषियों के भीतर इस सत्य का आविर्भाव हुआ था, एक दो नहीं, अनेकों के ऊपर इस सत्य का आविर्भाव हुआ था, और भविष्य में भी होगा। इस मन्त्रद्रष्टा का अर्थ है मंत्र अर्थात् तत्वों का साक्षात् करने वाला— शास्त्रों का पढ़ने वाला, पंडित या शब्द का ज्ञाता नहीं।

'नायमात्मा प्रवचेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन'। कठ १।२।२२

'बहुत बोलने, बहुत मेधावी होने अथवा वेदों के पढ़ने से भी आत्मा को प्राप्त नहीं किया जा सकता।'

वेद स्वयं इस को कह रहे हैं। क्या आप किसी दूसरे शास्त्र में ऐसी निर्भीक वाणी सुन सकते हैं कि वेद-पाठ से भी आत्मा नहीं प्राप्त किया जा सकता ? हृदय खोलकर चिल्लाकर उसे बुलाना पड़ेगा। तीर्थ या मन्दिर में जाने से, तिलक लगाने अथवा वस्त्र विशेष पहनने से धर्म पालन नहीं होता।

धर्म बाहर नहीं भीतर रहता है

तुम अपने शरीर पर चीता बाघ आदि के चित्र चित्रित कर लो, लेकिन जब तक तुम ईश्वर को प्राप्त नहीं करते, उतने दिन तक व्यर्थ है। अगर हृदय रंग गया तो बाहर के रंगने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। बाहर के रंग, आडम्बर आदि जब तक हमारे धार्मिक जीवन में सहायता करते हैं, तब तक उनकी उपयोगिता है, तब तक वे रहें, कोई हर्ज नहीं। किन्तु वे बहुधा केवल अनुष्ठान मात्र ही होते हैं, तब वे धर्म-जीवन में सहायक नहीं होते, बल्कि विघ्न डालने वाले

होते हैं। लोग इन बाह्य अनुष्ठानों को धर्म का ही स्वरूप समझ लेते हैं। तब मन्दिर जाना या पुरोहित को कुछ देना धर्म जीवन का प्रधान अंग हो जाता है। यह अनिष्टकर है; इसे रोकने का यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये। हमारे शास्त्र बार बार कहते हैं कि धर्म कभी वहिरेन्द्रिय ज्ञान के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। धर्म वही है जिसके पालन से हम लोग उस अक्षर पुरुष का साक्षात्कार कर सकें और ऐसा धर्म सब के लिये है। जिन्होंने इस अतीन्द्रिय सत्य का साक्षात्कार किया है, जिन्होंने आत्मा के स्वरूप को प्राप्त कर लिया है, जिन्होंने भगवान को प्रत्यक्ष देखा है, वे ही ऋषि हुए हैं। हज़ारों वर्ष पहले जिन्होंने इस अवस्था को प्राप्त किया था, वे जैसे ऋषि थे, वैसे ही हज़ारों वर्षों के बाद प्राप्त करने वाले भी ऋषि हैं। जब तक तुम ऋषि नहीं बनते तब तक तुम्हें धर्म जीवन नहीं प्राप्त हो सकता। तभी तुममें प्रकृत धर्म आरम्भ होगा, अभी तो केवल उसके लिये तैयारी कर रहे हो। तभी तुम्हारे भीतर धर्म का प्रकाश होगा, अभी तो केवल मानसिक व्यायाम और शारीरिक कष्ट भोग भोग रहे हो। इसलिये तुमको स्मरण रखना चाहिये कि हम लोगों का धर्म स्पष्ट भाषा में कहते हैं कि जो कोई भी मुक्ति प्राप्त करना चाहे, उसे ऋषित्व प्राप्त करना होगा, मन्त्रद्रष्टा होना होगा, ईश्वर का दर्शन करना होगा। यही मुक्ति है।

और यदि यही हम लोगों के शास्त्रों का सिद्धान्त है तो जान पड़ता है कि हम लोग खुद सहज ही अपने शास्त्रों को समझ

सकेंगे, स्वयं ही उनका अर्थ समझ सकेंगे। उनमें से जो हम लोगों के काम के होंगे, उन्हें ही ग्रहण कर सकेंगे, खुद बखुद सत्य को समझ सकेंगे। यहीं करना पड़ेगा फिर हम लोगों को प्राचीन ऋषियों के प्रति जो कुछ वे लोग हम लोगों के लिये कर गये हैं, सम्मान दिखाना होगा। वे लोग महापुरुष थे, किन्तु हम लोग और भी बड़ा होना चाहते हैं। उन्होंने प्राचीन काल में बड़े बड़े बहुत से कार्य किये थे, किन्तु हम लोगों को उनकी अपेक्षा भी बड़े बड़े कार्य करने पड़ेंगे। प्राचीन काल में भारतवर्ष में बड़े बड़े बहुत से ऋषि महर्षि थे, इस समय भी लाखों ऋषि होंगे, अवश्य ही होंगे। तुम लोग जितनी ही जल्दी इस बात पर विश्वास करोगे, उतना ही भारत और संसार से लिए कल्याणकर होगा। तुम लोग जो विश्वास करोगे वही होगा। अगर तुम लोग यह विश्वास करोगे कि हम निडर हैं, तो तुम निडर होगे। अगर तुम लोग अपने को साधु समझोगे तो साधु हो जाओगे। कोई बाधा तुम्हारे रास्ते में खड़ी न होगी। क्योंकि हम लोगों के परस्पर विरोधी सभी सम्प्रदायों के भीतर एक साधारण मत है तो वह यह है कि आत्मा में पहले ही से महिमा तेज और पवित्रता मौजूद है। केवल रामानुज के मत से आत्मा समय समय पर संकुचित होती है और समय समय पर विकाश को प्राप्त होती है। शंकराचार्य के मत से यह

तुम्हारे हृदय में सब भाव हैं, केवल उन्हें प्रकट भर करना है

संकोच और विकाश भय मात्र है। यह भेद भले ही हो, परन्तु सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि चाहे व्यक्त हो, अथवा अव्यक्त हो, चाहे जो भी रूप हो, यह शक्ति मौजूद है। जितना जल्द तुम इस पर विश्वास कर सको, उतना ही अच्छा। सब शक्ति तुम्हारे भीतर है। तुम सब कुछ कर सकते हो। इस पर भी विश्वास करो। यह कभी विश्वास न करो कि तुम दुर्बल हो। आज कल हम लोग जिस प्रकार अपने को आधा पागल समझ लेते हैं, ऐसा कभी न समझो। तुम दूसरे की सहायता के बिना सब कुछ कर सकते हो। तुम्हारे भीतर सभी शक्तियां हैं, उठ कर खड़े हो, और तुम्हारे भीतर जो शक्ति छिपो हुई है, उसे प्रकट करो।